

लखनऊ विश्वविद्यालय की
बी.ए. प्रथम वर्ष, हिन्दी साहित्य के
प्रथम प्रश्नपत्र हेतु निर्धारित पाठ्यपुस्तक

मध्ययुगीन काव्यसंकलन

सम्पादक

डॉ० प्रेमशंकर तिवारी
डॉ० (श्रीमती) प्रेम सुमन शर्मा

प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ

Shaelendri Rawat 205

(लखनऊ विश्वविद्यालय की बी.ए. प्रथम वर्ष, हिन्दी साहित्य के
प्रथम प्रश्नपत्र हेतु स्वीकृत पाठ्यपुस्तक)

मध्ययुगीन काव्यसंकलन

सम्पादक

डॉ० प्रेमशंकर तिवारी

आचार्य, हिन्दी-विभाग

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

तथा

डॉ० (श्रीमती) प्रेम सुमन शर्मा

उपाचार्य, हिन्दी-विभाग

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ



प्रकाशन केन्द्र

डालीगंज रेलवे क्रॉसिंग, सीतापुर रोड, लखनऊ - 226 020
☎ (0522) 2743208, 2743217



इस संग्रह के किसी भी अंश को उद्धृत करने का अधिकार किसी को नहीं है। यदि संग्रह को किसी के द्वारा किसी भी रूप में क्षति पहुँचती है तो वह इस क्षतिपूर्ति हेतु उत्तरदायी होगा।

■ स्वत्वाधिकार : सम्पादकाधीन

■ संस्करण : 2008-09

■ प्रकाशक : प्रकाशन केन्द्र,
डालीगंज रेलवे क्रॉसिंग,
सीतापुर रोड़, लखनऊ - 226 020
☎ (0522) 2743208, 2743217

■ मूल्य : पैंतीस रुपये पचास पैसे (Rs. 35.50) मात्र।

प्राक्कथन

हिन्दी साहित्य का मध्ययुगीन काव्य भावप्रवणता और कलात्मक सौन्दर्य की दृष्टि से सर्वाधिक समृद्ध है। प्रस्तुत संकलन में मध्ययुगीन काव्य के कबीरदास, मलिक मुहम्मद जायसी, सूरदास, तुलसीदास, बिहारी, भूषण और घनानन्द के काव्यांश संकलित हैं। कबीरदास भक्तिकाल की निर्गुणभक्तिकाव्यधारा की ज्ञानाश्रयीशाखा तथा मलिक मुहम्मद जायसी प्रेमाश्रयीशाखा के मूर्धन्य कवि हैं। सूरदास भक्तिकालीन सगुणभक्तिकाव्यधारा की कृष्णभक्तिशाखा तथा तुलसीदास रामभक्तिशाखा के अन्यतम कवि हैं।

उत्तरमध्यकाल (रीतिकाल) के तीन कवियों के काव्यांशों का संकलन इस पुस्तक में है। बिहारी रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि हैं। भूषण रीतिबद्ध कवि (लक्षण ग्रन्थकार) के साथ-साथ वीररस के कवि के रूप में भी विख्यात हैं। घनानन्द रीतिमुक्त स्वच्छन्द काव्यधारा के सर्वोत्कृष्ट कवि हैं।

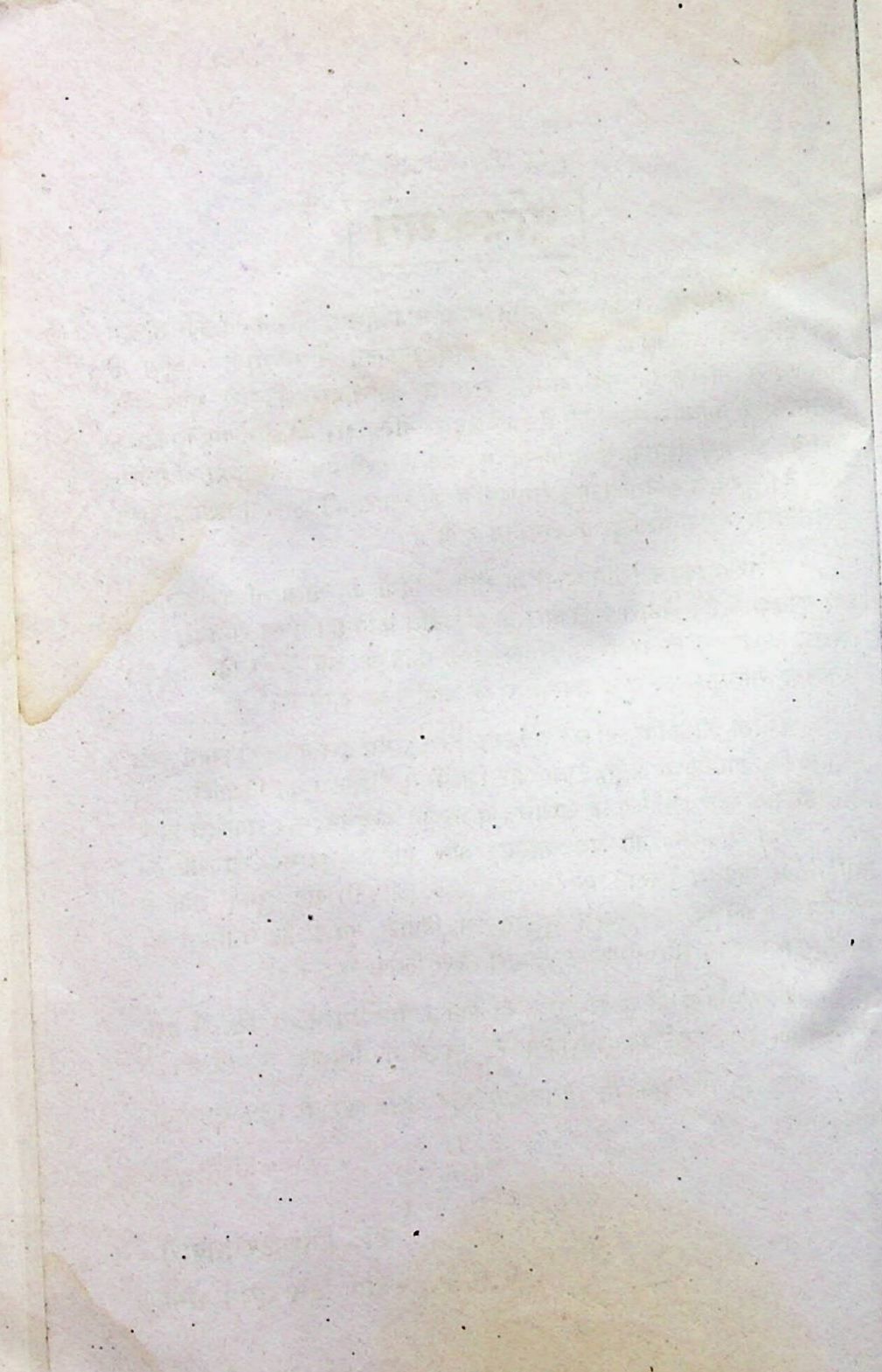
कवियों की कविताओं का संकलन करते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि कवियों के अनुभूतिगत और शिल्पगत वैशिष्ट्य का विद्यार्थियों को ज्ञान हो सके और साहित्य के अध्ययन में उनकी रुचि निरन्तर संवर्द्धित होती रहे। प्रस्तुत संकलन की पूर्व पीठिका और मलिक मुहम्मद जायसी का साहित्यिक परिचय लिखने का दायित्व डॉ० (श्रीमती) प्रेम सुमन शर्मा ने निभाया है। कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, बिहारी, भूषण और घनानन्द का साहित्यिक परिचय डॉ० प्रेमशंकर तिवारी द्वारा लिखा गया है।

प्रकाशन केन्द्र के व्यवस्थापक श्री विवेक मालवीय ने तत्परता से इस संकलन का सुरुचिपूर्ण प्रकाशन किया है; एतदर्थ वे साधुवाद के पात्र हैं।

आशा है, यह संकलन विद्यार्थियों और अध्येताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

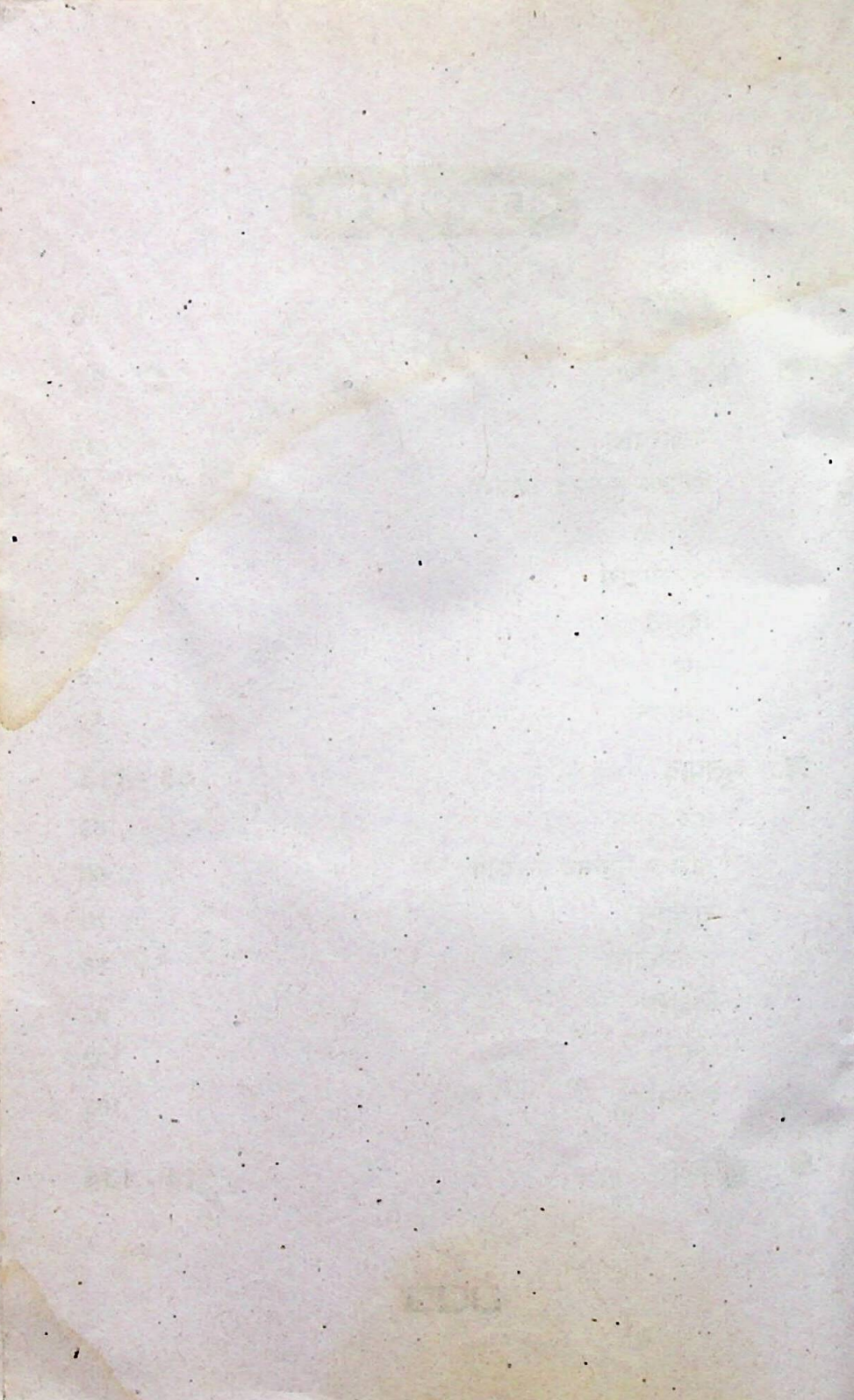
डॉ० प्रेमशंकर तिवारी

डॉ० प्रेम सुमन शर्मा



अनुक्रमणिका

■ पूर्व पीठिका	1 - 36
■ कवि परिचय	37 - 62
कबीरदास	37
मलिक मुहम्मद जायसी	40
सूरदास	46
तुलसीदास	49
बिहारी	53
भूषण	56
घनानन्द	59
■ मूलपाठ	63 - 113
कबीरदास	63
मलिक मुहम्मद जायसी	69
सूरदास	79
तुलसीदास	88
बिहारी	97
भूषण	102
घनानन्द	108
■ चूर्णिका	114 - 134



पूर्व पीठिका

काव्य, जीवन और जगत् के गत्यात्मक सौन्दर्य की शब्दमयी साकार अभिव्यंजना है। जीवन एवं जगत् का गत्यात्मक सौन्दर्य देशकाल, परिवेश, प्रेरणा तथा प्रत्यय भेद के प्रभावस्वरूप प्रत्येक युग में भिन्न-भिन्न रूपों में रूपायित होता रहा है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने हिन्दी काव्य के विकास के विभिन्न युगों की व्याख्या जीवन और जगत् के उपर्युक्त गतिमान सौन्दर्य के परिप्रेक्ष्य में की है और तदनुरूप उन्हें अभिधान भी दिए हैं। हिन्दी साहित्य का मध्यकाल वैचारिक संपन्नता तथा कला-वैभव का युग होने के साथ-साथ काव्यरचनाओं की दृष्टि से भी सर्वश्रेष्ठ काल कहा जाता है। अपने उदात्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य के कारण ही मध्ययुग के एक विभाग 'भक्तिकाल' को स्वर्णयुग की संज्ञा से अभिहित किया गया है। वस्तुतः हिन्दी साहित्य का यह काल आंदोलन, प्रचार, विकास एवं चमत्कार का काल है। यही नहीं, विचार और कला की दृष्टि से, इस युग के अनेक कवियों की गणना आज भी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवियों की शृंखला में की जाती है। हिन्दी की मध्यकालीन काव्यभूमि पर दृष्टिनिक्षेप करते हुए हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखकों ने मध्ययुग को दो भागों में विभाजित किया है। विक्रम संवत् १३७५ से लेकर १६०० तक की विस्तृत कालावधि को क्रमशः पूर्वमध्यकाल (सं० १३७५ वि० से सं० १७०० वि० तक) और उत्तरमध्यकाल (सं० १७०० वि० से सं० १६०० वि० तक) के नाम से

अभिहित किया गया है। पूर्वमध्यकाल को भक्तिकाल तथा उत्तरमध्यकाल को रीतिकाल की भी संज्ञा दी गई है।

भक्तिकाल में पारलौकिकता एवं अध्यात्म समन्वित भावनाओं की प्रधानता रही है तो रीतिकाल में लौकिक तथा भौतिक भावनाओं की। भक्तिभाव प्रधान भक्तिकाव्य का सम्बन्ध धर्माश्रयी कविता से है जबकि श्रृंगारिक मनोभावों से युक्त रीतिकाव्य राजाश्रयी कविता से सम्बद्ध है। भक्तिकालीन कवियों कबीर, जायसी, तथा सूर एवं तुलसी ने क्रमशः ईश्वर के निर्गुण और सगुण रूपों को अभिव्यक्ति प्रदान की है तथा रीतिकालीन कवियों ने ईश्वर की लावण्यमय छवि की अत्यंत कलात्मक ढंग से अभिव्यंजना की है। इसके साथ ही साथ जहाँ एक ओर भक्तिकालीन काव्य जाग्रति के स्वर से मुखरित लोकजागरण का काव्य है वहीं दूसरी ओर दरबारी संस्कृति की संवाहक रीतिकालीन कविता सामन्तीय परिवेश के बीच पल्लवित और पुष्पित हुई है। इस प्रकार काव्य में भावयोजना की दृष्टि से भक्तिकाल तथा रीतिकाल दोनों परस्पर पर्याप्त भिन्न हैं। इन दोनों युगों में स्थूल रूप से यदि कोई समानता है तो ब्रजभाषा प्रयोग की। बिहारी, भूषण, देव, घनानन्द आदि रीतिकालीन कवियों ने अपनी काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा को अपनाया है और सूर, तुलसी आदि कतिपय अन्य भक्त कवियों ने भी अपनी काव्यरचनाओं में ब्रजभाषा का प्रयोग किया है।

भक्तिकालीन हिन्दी काव्य में केवल भक्ति के कोरे उपदेश ही संकलित नहीं हुए हैं बल्कि भारतीय संस्कृति का उदात्त स्वर भी इसमें मुखरित हुआ है। मूल्यबोध, शक्ति एवं सामर्थ्य की दृष्टि से भक्तिकालीन काव्य रीतिकाव्य की तुलना में अधिक प्रभावशाली है किन्तु शब्दगत चमत्कार, भाषागत शिल्प तथा आलंकारिक वैभव की झलक देने वाली रीतिकालीन कविता की अपनी एक पृथक् पहचान है। मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की रचना के मूलभूत कारणों तथा परिस्थितिगत प्रेरणाओं को

भली प्रकार से समझने के लिए तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परिवेश का ज्ञान होना आवश्यक है।

भारतीय इतिहास में मध्यकाल, राजनीतिक दृष्टि से दो संस्कृतियों हिन्दू तथा मुस्लिम के परस्पर संघर्ष का युग स्वीकार किया जाता है। विदेशी आक्रमणों के प्रभावस्वरूप देश की केन्द्रीय शक्ति अत्यन्त क्षीण हो चुकी थी। राजनीतिक दृष्टि से यों तो अरबों द्वारा सातवीं शताब्दी में ही भारत पर आक्रमण किए जा चुके थे किन्तु धर्म एवं संस्कृति को लक्ष्य बनाकर दसवीं शताब्दी में किए गए विदेशी आक्रमणों का रूप उनकी तुलना में अधिक उग्र एवं व्यापक था। उत्तर भारत के अन्तिम शक्तिशाली हिन्दू सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् देश की अखण्डता और एकता विभिन्न इकाइयों में विभक्त होकर अपनी गरिमा खो चुकी थी। भारत में उस समय तुर्कों और अफगानों का राज्य स्थापित हो चुका था, जिन्होंने बारहवीं शती से सोलहवीं शती के प्रथम चरण तक अपना राज्य स्थापित रखा। प्रारम्भिक स्थिति में तो मुस्लिम विजेता मात्र आक्रमणकारियों के रूप में ही भारत आए थे किन्तु बाद में उन्होंने यहाँ बसना आरम्भ कर दिया। मुहम्मद गोरी के बाद कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा भारत पर स्वतंत्र राज्य का निर्माण किया गया किन्तु राज्य के आंतरिक विद्रोहों के कारण गुलाम वंश अधिक समय तक न चल सका। गुलाम वंश के नष्ट हो जाने के पश्चात् शासन की सत्ता खिलजियों के संरक्षण में चली गई जिसका प्रसिद्ध शासक अलाउद्दीन खिलजी था तथा जिसने अपनी शक्ति के बल पर दक्षिण के राज्यों पर विजय प्राप्त की थी। उसने अपनी धार्मिक कट्टरता एवं धर्मान्धता से प्रेरित होकर हिन्दुओं पर घनघोर अत्याचार किए। उन्हें पूर्णतया निर्धन बनाने के लिए उन पर अनेक प्रकार के अनावश्यक कर लगा दिए थे जिससे उनकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। अलाउद्दीन की कठोर नीति के बावजूद भी राज्य के मध्य

आंतरिक विद्रोह एवं षड्यंत्रों का होना रुक न सका, परिणामतः खिलजी वंश का अंत एवं तुगलक वंश का उदय हुआ।

तुगलक वंश के शासक गयासुद्दीन तुगलक ने अपनी सैनिक शक्ति का विस्तार करते हुए राज्य के विभिन्न भागों को अपने नियंत्रण में ले लिया। सन् १४४० में उसके पुत्र मुहम्मद तुगलक के दिल्ली का शासक बन जाने पर हिन्दू धर्म को दबाने व इस्लाम धर्म को उन्नत करने के लिए अनेक प्रयत्न किए गए किन्तु अपनी विभिन्न असफलताओं के कारण मुहम्मद तुगलक का राज्यकाल अधिक समय तक नहीं चल सका। मुहम्मद तुगलक के बाद फिरोज तुगलक सिंहासन पर बैठा, जिसने हिन्दुओं और गैर सनातनी मुसलमानों के प्रति धार्मिक कट्टरतापूर्ण व्यवहार किया। फिरोज के उत्तराधिकारियों के विलासी और अयोग्य होने के कारण तुगलक वंश के अन्तिम और शक्तिहीन शासक महमूद के समय में तैमूरलंग ने भारत पर सफलतापूर्वक आक्रमण किया जिससे देश में चारों ओर अराजकता तथा अशान्ति फैल गयी। अपने शासनकाल में उसने अनेक प्रकार के भयानक और विनाशकारी अत्याचार किए क्योंकि उसका यह आक्रमण मात्र राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि धार्मिक दृष्टि से भी प्रेरित था। तुगलक वंश की समाप्ति के बाद भी मुस्लिम सत्ता का विकास अवरुद्ध नहीं हुआ। कुछ वर्षों तक राजधानी पर वजीर इकबाल खां का अधिकार रहने के बाद सत्ता लोदी वंश के हाथ में आ गई।

सन् १४५१ के लगभग बहलोल लोदी द्वारा, सिंहासन पर बैठते ही, शासन व्यवस्था में सुचारुता लाने का प्रयास किया गया किन्तु अफगान नेताओं के विद्रोहों के कारण वह सफल न हो सका और उसके पश्चात् उसका पुत्र सिकन्दर गद्दी पर बैठा जिसने अपनी धर्मान्धता तथा अदूरदर्शिता के कारण बहलोल के प्रयत्नों पर पानी फेर दिया। सिकन्दर एक शक्तिशाली और महत्त्वाकांक्षी सम्राट था। उसकी मृत्यु के पश्चात्

उसके उत्तराधिकारी तथा लोदीवंश के अंतिम शासक इब्राहीम लोदी का सन् १५२६ में पानीपत के मैदान में बाबर के साथ युद्ध हुआ, जिसने भारत के इतिहास में एक नया अध्याय खोला और मुगलवंश की स्थापना हुई। बाबर अपूर्व प्रतिभा एवं योग्यता से सम्पन्न शासक था। उसने असंख्य राज्यों में विभक्त भारत में एक चक्रवर्ती राज्य की स्थापना की। सन् १५३० में बाबर की मृत्यु के पश्चात् हुमायूँ शासक हुआ किन्तु शेरशाह ने युद्ध में हुमायूँ को पराजित किया और स्वयं शासक बन बैठा। तत्पश्चात् शेरशाह के निरंकुश एवं अयोग्य उत्तराधिकारियों की स्थिति का लाभ उठाते हुए, थोड़े ही समय में, हुमायूँ ने अपना खोया हुआ राज्य पुनः प्राप्त कर लिया किन्तु दुर्भाग्यवश उसके छः माह पश्चात् ही उसकी मृत्यु हो गई।

हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र अकबर शासक हुआ, जो हिन्दू धर्म का आदर करता था तथा जिसने हिन्दुओं के पौराणिक ग्रंथों को फारसी में अनूदित करने की आज्ञा भी दे दी थी। उसने अपने साम्राज्य में एक ऐसे शासन की नींव डाली जो किसी संप्रदाय अथवा वर्ग विशेष से सम्बद्ध न होकर समस्त जातियों एवं धर्मों का सम्मिलित शासन था। अकबर के पश्चात् जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब, बहादुरशाह तथा मुहम्मदशाह सिंहासनारूढ़ हुए किन्तु सन् १७३४ में पर्शिया के शाह नादिरशाह के भारत आक्रमण से मुगलों की रही-सही शक्ति भी क्षीण हो गई। मुहम्मदशाह को परास्त कर नादिरशाह ने दिल्ली पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इसके बाद जो मुगल बादशाह हुए, वे केवल नाम मात्र के ही थे। इस प्रकार आए दिन के शासक-परिवर्तन के प्रभावस्वरूप हिन्दू जनता को शासकों के अतिरिक्त उनके राज्याधिकारियों तथा पदाधिकारियों का भी कोपभाजन बनना पड़ता था, जो अवसर मिलते ही प्रजा को असह्य कष्ट देते थे और हिन्दुओं को अपमानित करने में लेशमात्र भी संकोच नहीं करते थे। इस सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद

का यह कथन उल्लेखनीय है— 'इस्लाम ने भारत के समस्त कुफ़्र को तोड़ डालने की प्रतिज्ञा के साथ भारत में पदार्पण किया।'

भक्तिकालीन राजनीतिक परिस्थिति का दूसरा पक्ष हिन्दू राज्यशक्तियों के अभ्युदय से सम्बद्ध है। अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् यह अभ्युदय देश के दो सशक्त राज्यों के रूप में दिखाई पड़ता है, एक तो दक्षिण में विजयनगर की स्थापना के रूप में तथा दूसरा उत्तर में मेवाड़ के नेतृत्व में संगठित राजपूत शक्ति के रूप में। कालान्तर में शनैः—शनैः प्रबल होती हुई ये राज्यशक्तियाँ अपने पड़ोसी मुस्लिम राज्यों से निरंतर संघर्षरत रहते हुए भी कभी पराजित नहीं हुईं। उत्तर भारत में राणा साँगा के नेतृत्व में राजपूत शक्ति इतनी प्रबल हो गई थी कि दिल्ली की राजगद्दी पर हिन्दुओं के अधिकार की सम्भावना स्पष्ट होने लगी थी। ऐसी स्थिति में हिन्दू जनता का उत्साहित एवं प्रेरित होना स्वाभाविक था। हिन्दी के क्षेत्र में एक लम्बे समय से चले आते हुए संघर्ष के परिणामस्वरूप जर्जरप्राय हिन्दी धर्म एवं दर्शन सम्बन्धी सूत्रों की स्थापना करना, तत्कालीन परिस्थितियों की दृष्टि से अनिवार्य हो गया था। इसी आवश्यकता की पूर्ति हेतु कतिपय संत और भक्त कवियों ने अपनी मनीषा को आस्तिकता की स्थापना तथा आत्मनिरीक्षण करने में संलग्न किया। उन्होंने राजनैतिक क्षेत्र में, धार्मिक एवं राष्ट्रीय भावों से प्रेरित संघर्षों को स्पष्टतः न तो किसी प्रकार का समर्थन ही प्रदान किया और न ही मुस्लिम सत्ता का स्वतंत्र रूप से विरोध किया। उनका उद्देश्य गंभीर था, जिसकी पूर्ति हेतु वे मूल दौर्बल्य को ही समाप्त करना चाहते थे। तत्कालीन परिस्थितियों का निराशापूर्ण चित्रण करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी ने लिखा है—

गोंड गंवार नृपाल महि यमन महा—महिपाल।

साम न दाम न भेद कलि, केवल दण्ड कराल।।

मध्यकाल में, मुख्यतः उत्तर भारत में, अमूल्य भक्ति साहित्य रचना करने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न हो चुकी थीं। जनता को राजनीति के तुमुल अंधकार में यदि कहीं आशा की किरण दृष्टिगोचर हो रही थी, तो वह मात्र भक्ति-भावना के बल पर दनुग्रह में ही। ऐसी स्थिति में उच्छृंखल मुस्लिम शासन की प्रतिक्रिया रूप दक्षिण के राघवानंद तथा वल्लभाचार्य आदि के प्रयासों द्वारा उत्तर भारत में वैष्णव भक्तिधारा प्रवाहित होने लगी।

राजनीतिक परिस्थितियों की अव्यवस्था समाज के व्यवहार आचरण में उच्छृंखलता को जन्म देती है। भारत में मुसलमानों के न जाने के कारण हिन्दुओं की मनोवृत्ति निराशा एवं हीन भावनाओं से सित हो गई थी और ऐसी स्थिति में हिन्दुओं के हृदय में स्वाभिमान एवं तेष्ठा की भावना लुप्तप्राय हो चुकी थी। ऐसे समय में जबकि आततायी मुसलमानों से निरंतर संघर्ष करके भी हिन्दुओं का निर्वाह नहीं हो सकता था, भगवान् की भक्ति के अतिरिक्त अन्य कोई ऐसा उपाय नहीं था जिसके माध्यम से हिन्दू-मुसलमानों को परस्पर निकट लाकर उनके हृदय को मिलाया जा सकता। भक्त और भगवान् के स्तर पर किसी प्रकार का कोई भेद नहीं हो सकता था अतः कबीर, दादू, नानक आदि संत कवियों ने निर्गुण निराकार ईश्वर भक्ति विषयक गीत गाकर हिन्दू-मुस्लिम धर्म के मध्य एकता की भावना को स्थापित करने का यत्न किया, फलस्वरूप निर्गुणोपासना की धारा वेगपूर्वक प्रवाहित होने लगी। मुस्लिम धर्म में ईश्वर के सगुण रूप को स्वीकृति न प्राप्त होने के कारण उस रूप को ग्रहण करने पर उक्त प्रकार की एकता सहज सम्भव नहीं थी। यही कारण है कि अनेक हिन्दू-मुस्लिम संतों द्वारा भेराकारोपासना का प्रचार-प्रसार किया गया।

वैदिक काल की वर्णाश्रम व्यवस्था इस युग में कर्म के स्थान पर जन्म पर आधारित हो गई थी, जिसके परिणामस्वरूप जातियों के

मध्य अनेक उपजातियाँ उद्भूत हुईं जिनमें परस्पर एकता के स्थान पर प्रतिस्पर्धा का भाव उत्पन्न होने लगा। संपूर्ण समाज ऊँच-नीच की कलुषित भावना, नारी स्थिति की दयनीयता, वर्ण-भेद एवं आर्थिक वैषम्यों से ग्रस्त हो गया। जाति-व्यवस्था उन लोगों के लिए अधिक कष्टदायी थी, जो निम्नस्तर के थे। उनके शोषण पर ही विलासिता की ऊँची प्राचीरें खड़ी की गई थीं फिर भी उन्हें समाज में किसी प्रकार का महत्त्व और सम्मान प्राप्त नहीं था। शिक्षा, संस्कार तथा सामाजिक आदि सभी दृष्टियों से निम्न वर्ग वाली जातियाँ पिछड़ी हुई थीं। जनसामान्य निर्धनता, दुर्दशा और अनिश्चितता के मध्य अपना जीवन व्यतीत कर रहा था। उपयुक्त साधनों के अभाव में कृषि सम्बन्धी स्थिति भी संतोषजनक नहीं थी। तत्कालीन शासकों के पास जनसाधारण के विषय में चिन्ता करने अथवा उनकी उन्नति हेतु कार्य करने का अवकाश नहीं था, जिससे जनता का जीवन-स्तर निरन्तर पतनोन्मुख होता जा रहा था। वस्तुतः, इस काल में राजा प्रजा के लिए नहीं बल्कि प्रजा राजा के लिए थी। समाज में नारियों की स्थिति का मूल्यांकन शृंगार और विलास की दृष्टि से किया जाता था। अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व के आधार पर नारियों को किसी प्रकार का सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं था। राजदरबारों के मध्य बहुनारी-संग्रह विलासिता का प्रतीक था। इस युग में रूपवती स्त्रियों का बलात् अपहरण कर लिया जाता था। मुसलमान सामन्तों की कुदृष्टि एवं अत्याचारों से बचने के उद्देश्यों से ही हिन्दू-समाज में पर्दा-प्रथा का प्रचलन हो गया था। सती प्रथा भी इस समय प्रचलित थी। तत्कालीन हिन्दू राजा भी प्रायः मुस्लिम शासकों का अनुकरण करने में अपनी शान समझते थे। सौन्दर्यसम्पन्ना स्त्रियों को दासी के रूप में संतोषजनक मूल्य प्राप्त हो जाता था। नारी विषयक इन कुप्रथाओं के वर्णन से तत्कालीन नारी-समाज का अवमूल्यन, निश्चय ही स्पष्ट हो जाता है। मध्ययुगीन समाज शोषक और शोषित दो वर्गों में विभाजित हो गया था। भक्त कवियों ने समाज के आर्थिक परिवेश का विवेचन-विश्लेषण

करते हुए धार्मिक और सामाजिक असमानता से पीड़ित जनसामान्य को उद्बोधित करने का प्रयत्न किया। कबीरदास ने निम्नवर्ग में व्याप्त ग़रीबी एवं दीनता की भावना का परिष्कार कर उन्हें सहज अखड़ता से युक्त आध्यात्मिक उपदेश दिए। विभिन्न सामाजिक रूढ़ियों का खंडन करते हुए उन्होंने समान युग धर्म को स्थापित किया। उन्होंने विग्रहाराधना का खंडन किया, जिसकी शरण में केवल उच्चवर्ग ही जा सकता था। इसी प्रकार तीर्थयात्रा आदि पाखंडों, जातिगत दुरभिमान तथा अवतारवाद आदि का भी कबीर ने तीव्र स्वर में विरोध किया। इसके साथ ही समकालीन उत्सव, त्योहार आदि का भी साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा। हिन्दी के कीर्तन-काव्यों में सभी प्रमुख ऋतु-उत्सवों एवं पर्वों के सम्बन्ध में साहित्य प्राप्त होते हैं। इस प्रकार इस युग विशेष में रचा जाने वाला साहित्य अपनी समकालीन सामाजिक परिस्थितियों से पर्याप्त रूप में प्रभावित हुआ है।

राजनीतिक तथा सामाजिक संगठनों के मूलतः धर्म से जुड़े होने के कारण मध्यकालीन भारतीय जनता एक ऐसे धार्मिक वातावरण के मध्य जी रही थी जिसकी प्राप्ति उसे प्राचीन परंपरा के माध्यम से हुई थी। वैदिक काल तक जितने भी धर्मों की व्याप्ति भारतवर्ष में हुई, उनमें से प्रायः सभी धर्मों का अस्तित्व भारतभूमि में किसी न किसी रूप में वेद्यमान अवश्य था। देश का प्रत्येक जन किसी न किसी धर्म से जुड़ा था। तदयुगीन प्रचलित धर्मों के रूप में शैव, शाक्त, वैष्णव, बौद्ध तथा जैन आदि धर्मों का उल्लेख किया जा सकता है। मध्यकाल में धार्मिक दृष्टि से बौद्ध धर्म का अत्यन्त विकृत रूप परिलक्षित होता है। वह हीनयान तथा महायान इन दो संप्रदायों में विभक्त हो गया था। हीनयान सेद्धांत पक्ष की जटिलता से युक्त था और महायान में जीवन और धर्म के व्यावहारिक पक्ष की प्रधानता थी। कालान्तर में महायान का विकृत रूप ही मंत्रयान के नाम से जाना जाने लगा। इसी के साथ ही वाममार्ग

का भी प्रचार था जिसके मदिरापान, मांस-भक्षण तथा मैथुन भोग आदि व्यवहारों को मंत्रयान द्वारा भी अपना लिया गया था। पाखंडियों द्वारा वाममार्मी साधना भोगविलास का साधन बन गई थी। ऐसे समय में साधकों ने महायान के विकृत रूप मंत्रयान में कतिपय संशोधन करते हुए उसकी स्थापना एक नवीन संप्रदाय-वज्रयान के रूप में की। वज्रयान में दीक्षित हुए चौरासी सिद्धों ने जन्त्र-मन्त्र की शैली को अपनाते हुए भी उनमें कुछ क्रान्तिकारी परिवर्तन किए किन्तु कुछ समय बाद इस साधना पद्धति का रूप भी विकृत हो गया, फलस्वरूप नाथपंथी साधकों की हठयोग साधना का प्रचार हुआ जिसने भक्तिकाल के संत कवियों को भी गम्भीर रूप से प्रभावित किया।

भारतवर्ष में दक्षिण से आई भक्तिभावना की लहर का पूर्ण विकास वैष्णव धर्म में देखा जा सकता है। वैसे तो दक्षिण देश में भक्ति का प्रचार एवं प्रसार आलवार संतों के मध्य, शंकर से भी बहुत पहले हो चुका था। बौद्ध धर्म के विरोध के रूप में शंकराचार्य ने अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया था, जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप अनेक ऐसे धार्मिक संप्रदायों की उत्पत्ति हुई जिनमें नारायण की भक्ति पर विशेष बल दिया गया और सामान्य जन को एक स्थूल आश्रयस्थली प्राप्त हुई। इन संप्रदायों के अन्तर्गत विष्णु के अवतारों— राम तथा कृष्ण की कल्पना की गई। हिन्दी के क्षेत्र में रामानन्द सम्प्रदाय की दो शाखाएँ पल्लवित हुई। परम्परागत योग एवं ज्ञान की धाराओं से संयुक्त एक शाखा निर्गुण भक्त कवियों के रूप में परिणत हुई तथा दूसरी सगुण भक्त कवियों के रूप में। इसी के साथ ही साथ मुस्लिम आक्रमणों से पूर्व भारतवर्ष में सूफियों द्वारा कुछ ऐसे इस्लामी वातावरण तथा समुदाय स्थापित कर दिए गए थे, जिन्होंने भारतीय अद्वैतवाद की भावना को अपनी शैली से अपनाते हुए, प्रेमस्वरूप निर्गुण व निराकार ब्रह्म का प्रचार किया। अपने धर्म का त्याग किए बिना ही नाथ संप्रदाय एवं एकेश्वरवादी विचारों को स्वीकारते

हुए, उनके द्वारा हिन्दू-मुस्लिम हृदयों को एक-दूसरे से जोड़ने का प्रयास किया गया।

मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में नैतिक बंधन शिथिल हो चुके थे तथा दिनों-दिन बौद्धिक प्रतिभा का हास होने लगा था। धर्म के नाम पर अंधविश्वासों, रूढ़ियों एवं बाह्याडम्बरों की ही व्याप्ति थी। भक्तिकालीन महत्त्वपूर्ण भक्ति की लहर, जो अत्यन्त व्यापक और प्रबल थी, शनैः-शनैः विकृत और शान्त हो गई। भक्ति संप्रदायों के पराभव के साथ ही साथ कृष्ण सम्बन्धी मधुर भाव की भक्ति ने नायक-नायिका भेद निरूपण का स्थान ग्रहण कर लिया था। पूर्वकालीन संस्कृति के मूलाधार विस्मृत किए जा चुके थे और एक नवीन संक्रान्तिकालीन संस्कृति का उदय होने लगा था जिसका मुख्य कारण मुगलों से विरासत रूप में प्राप्त हुई विलासिता की वृत्ति था।

मध्यकाल में, आर्थिक व्यवस्था की दृष्टि से भारत की दशा अत्यंत शोचनीय एवं चिन्तनीय थी। तत्कालीन समाज मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित था— अर्थसम्पन्न उच्चवर्ग तथा अर्थाभाव से ग्रसित निम्नवर्ग। मुस्लिम आक्रमणों से पूर्व, मानवता की सम्पन्नता का प्रतीक भारत देश समृद्धि एवं सम्पन्नता का केन्द्र था। महमूद गजनवी के आक्रमणों के परिणामस्वरूप देश की आर्थिक स्थिति धीरे-धीरे विकारग्रस्त होने लगी और अधिकांश जनता निर्धनता एवं अभावों के मध्य अपना जीवन बिताने लगी। आर्थिक संकट से ग्रसित समाज की सुख व शान्ति नष्ट हो गई थी और उसका स्थान पारस्परिक घृणा, विद्वेष, ईर्ष्या तथा लोभ आदि की भावना ने ले लिया था। सामान्य जनता द्वारा अत्यंत परिश्रमपूर्वक अर्जित किए गए धन का उपयोग राजवर्ग की विलासिता की पूर्ति हेतु किया जाता था। हिन्दुओं को मात्र हिन्दू होने के कारण अपनी आय का लगभग अर्द्धांश कर के रूप में देना पड़ जाता था। ऐसी स्थिति में भारतीय जनता की एकरूपता धीरे-धीरे नष्ट होती गई और समाज के

मध्य अनेक प्रकार के भेदभाव की भावना उत्पन्न हो गई। औरंगजेब के राज्यकाल में यह स्थिति अधिक गंभीर थी किन्तु अकबर के शासनकाल में इसमें कुछ सुधार हुआ था। सामान्यतः, मुगलकाल में धन, वैभव, सत्ता एवं ऐश्वर्य आदि केवल कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के हाथ में केन्द्रित था। शासक वर्ग एवं उच्च वर्ग भवन-निर्माण, नृत्य तथा सुरा-पान आदि में पर्याप्त धन का व्यय करता था किन्तु जनता की उन्नति अथवा उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विचार करने का न तो उनके पास समय था और न धन ही। अपने स्वार्थों में संलग्न रहते हुए, अय्याशी का जीवन जीना ही उनका एकमात्र उद्देश्य था। इस प्रकार की आर्थिक विषमता के फलस्वरूप देश की संस्कृति असंतुलित हो गई थी। भारतीय जनता के कंगाल हो जाने का सर्वाधिक प्रभाव मध्य एवं निम्नवर्ग पर पड़ा। ऐसी स्थिति में हिन्दी के अनेक संत एवं भक्त कवियों ने मानवोचित स्वभाव की ओर इंगित करते हुए दीन एवं शोषित जनता को कल्याणकारी उपदेश दिए। इसके साथ ही साथ तत्कालीन निम्न वर्ग की हीन झोंकिया भी साहित्य में यत्र-तत्र देखने को मिलती हैं। इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से मध्ययुगीन समाज के मध्य संतुलन का अभाव था, जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूपों में साहित्य पर भी पड़ा।

मध्यकालीन धार्मिक संघर्ष के युग में विचारकों द्वारा अपने विचार छन्दबद्ध रूप में ही प्रस्तुत किए गए। तत्कालीन साहित्य के मूल में प्रायः सिद्धांत-निरूपण एवं भक्ति-प्रचार की मनोवृत्ति रही है जिससे कबीर, जायसी, सूर तथा तुलसी जैसे भावुक कवि भी मुक्त नहीं रहने पाए हैं। अपने उद्गारों की अभिव्यक्ति के लिए हिन्दुओं का उच्च वर्ग संस्कृत का प्रयोग कर रहा था तो दूसरी ओर मुगलों द्वारा राजकाज की भाषा के रूप में फ़ारसी को स्वीकृति प्राप्त हो चुकी थी, फलस्वरूप इस भाषा में प्रचुर मात्रा में इतिहास-ग्रन्थों एवं कविताओं की रचना हुई। इतना ही नहीं, संस्कृत के अनेक ऐतिहासिक एवं धार्मिक ग्रन्थों का

अनुवाद भी फ़ारसी में किया गया। शेरशाह सूरी और विभिन्न मुसलमान शासकों के साथ ही हिन्दू राजाओं व समृद्ध लोगों द्वारा हिन्दी को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ किन्तु फ़ारसी एवं संस्कृत सदृश उसे सम्मान नहीं दिलाया जा सका। ब्रजभाषा की वार्ताओं एवं टीकाओं में कभी-कभी गद्य का प्रयोग भी दृष्टिगत होने लगा किन्तु प्रधानता पद्य की ही रही, जिसमें संपूर्ण भक्तिसाहित्य का प्रणयन हुआ। राज्याश्रित कवियों द्वारा प्रबन्ध तथा मुक्तक दो प्रकार की शैलियों में रचनाएँ की गईं। रस की दृष्टि से इस युग का साहित्य श्रेष्ठ है। भक्तिकालीन साहित्य अत्यंत सफलतापूर्वक उच्चतम धर्म को व्याख्यायित करते हुए मानवीय स्तर पर हृदय, मन एवं आत्मा की क्षुधा को तृप्त करता है।

रीतिकालीन साहित्य में प्रदर्शन एवं अलंकरण सम्बन्धी प्रवृत्तियों का प्राधान्य दृष्टिगत होता है। इससे पूर्व कृष्ण की मधुर भक्ति (सखी भाव) से प्रेरित होकर जिन ग्रंथों की रचना हुई थी, उनका पूर्ण परिपाक इस युग में देखा जा सकता है। कृष्णभक्ति के साथ ही साथ रामभक्ति शाखा में भी सखी भाव की मधुर उपासना विकास की ओर अग्रसर थी तथा राम-सीता की 'अष्टयाम' विलास-लीलाओं से सम्बद्ध वर्णन प्रचुरता के साथ किए जाने लगे थे। संतों के ज्ञानमार्ग में किसी प्रकार की कोई नवीनता नहीं आई और सूफीमत से सम्बद्ध साहित्य पतनोन्मुख होने लगा। रीतिकाल का साहित्य मुख्यतया राज्याश्रय में रचा गया था। भूषण इत्यादि कवियों की लोक-रचनाएँ उपलब्ध होती हैं किन्तु ऐसे कवि भी मूलतः राज्यों से सम्बद्ध रहते थे।

शाहजहाँ के शासनकाल के उत्तरार्द्ध से रीतिकाल का आरम्भ होने के कारण तथा बादशाह की रसिक प्रवृत्ति व साहित्य एवं कला के प्रति उसकी रुचि भी तत्कालीन साहित्य के विकास में सहायक सिद्ध हुई। भाषा की दृष्टि से इस युग में, हिन्दी प्रदेश में, विभिन्न भाषाओं का प्रयोग किया जा रहा था किन्तु शृंगारपरक भावनाओं की अभिव्यक्ति हेतु

प्रमुखतया ब्रजभाषा को ही ग्रहण किया गया। उल्लेखनीय है कि भक्तियुग में अवधी तथा ब्रज दोनों ही भाषाओं की प्रचुरता थी। रीतिकालीन साहित्य का सृजन अवध प्रान्त तथा राजस्थान में अपेक्षाकृत अधिक हुआ, फलस्वरूप इसकी भाषा में अवधी, बुन्देलखण्डी तथा राजस्थानी भाषा के प्रयोग प्राप्त होते हैं। इसके साथ ही साथ मुगल दरबार की भाषा फारसी होने के कारण उसकी दो शैलियों भारतीय-ईरानी शैली तथा शुद्ध ईरानी शैली का प्रभाव रीतिकालीन हिन्दी काव्य पर भी पड़ा। तत्पश्चात् शासक-परिवर्तन के प्रभावस्वरूप औरंगजेब की कट्टरनीति के कारण मुगल दरबार से बहिष्कृत हुई हिन्दी की रीतिकालीन कविता सामन्ती छत्रछाया में पोषित हुई। तत्कालीन सामन्ती जीवन अपेक्षया सरल एवं कम समस्याओं से युक्त था। यही कारण है कि रीतिकाव्य में जीवन-संधर्षों का स्वर मुखरित न हो सका, विलासिता उस युग का प्रधान स्वर था। अतः ऐसी स्थिति में कवियों के लिए साहित्य-सृजन का उद्देश्य भी प्रायः पांडित्य एवं चमत्कार प्रदर्शन तथा आश्रयदाताओं की प्रशंसा में रत रहते हुए प्रसाद रूप में उनकी कृपा-दृष्टि प्राप्त करना मात्र रह गया था।

भारतीय संस्कृति की मूलभूत विशेषता के रूप में समन्वयात्मकता की प्रवृत्ति की ओर संकेत किया जा सकता है। मध्यकाल के पूर्वार्द्ध में पुराणों की रचना हुई तथा पुराणकालीन समन्वित संस्कृति का प्रादुर्भाव हुआ। इस्लाम संस्कृति के भारत में प्रवेश के समय इसी हिन्दू संस्कृति की यहाँ व्याप्ति थी। पुराणों में पूजा-उपासना तथा कर्मकाण्ड में दर्शन का पुट दिया गया था। पौराणिक धर्म की प्रमुख विशेषताओं के रूप में—मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा, धर्मशास्त्रों का सम्मान, कर्मफल में विश्वास, अवतारवाद तथा गौ एवं ब्राह्मण की पूजा आदि का उल्लेख किया जा सकता है। लगभग इन सभी विशेषताओं का प्रभाव सगुण भक्तिसाहित्य में सर्वत्र स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होता है। मध्ययुगीन धर्म-साधना में पूर्ववर्ती समस्त धर्म-साधनाओं का अस्तित्व किसी न किसी रूप में बना रहा। शैव, शाक्त, भागवत जैसे मुख्य धर्मों में ज्ञान, योगतंत्र तथा भक्ति की

प्रवृत्तियाँ मिलने लगीं। समन्वयात्मकता की यह प्रवृत्ति धर्म के साथ ही साथ मूर्तिकला एवं चित्रकला में भी दृष्टिगत होने लगी। हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों के एक-दूसरे के निकट आने से भारत की सामाजिक संस्कृति का स्वरूप भी चमक उठा। इस प्रकार की प्रवृत्ति विशेष पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के मूल में किसी सीमा तक मुख्यतया समन्वयात्मकता की यह प्रवृत्ति ही कार्य कर रही थी।

भक्तिकाल के पश्चात् रीतियुग में विलासिता के प्रति आकर्षण की भावना से हिन्दू-मुस्लिम दोनों के धार्मिक संप्रदायों को गंभीर आघात पहुँचा। वैष्णव संप्रदायों के मठाधीशों को, राजाओं तथा सामन्तों को गुरुदीक्षा देते हुए गर्व की अनुभूति होने लगी। फलतः शनैः-शनैः मन्दिरों में भी ऐश्वर्य और विलासिता का साम्राज्य स्थापित होने लगा। बाह्यवरण मात्र ही धर्म-पालन के रूप में अवशिष्ट रह गया और इस प्रकार नैतिकता और धर्म के मध्य परस्पर सम्बन्ध-विच्छेद हो गया।

हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल के आविर्भाव एवं विकास के सम्बन्ध में विभिन्न इतिहासकारों ने अपने अलग-अलग मत व्यक्त किए हैं। कतिपय विद्वानों का मानना है कि भक्तियुग का उदय राजनीतिक पराजय का परिणाम है, जबकि कुछ अन्य विद्वान् इसे एक अविच्छिन्न सांस्कृतिक, सामाजिक तथा धार्मिक भावना का परिणाम मानते हैं। उनके अनुसार यह एक ऐसा आंदोलन है जिसने भारतीय साधना के इतिहास में अपनी अप्रतिम छाप छोड़ी है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा बाबू गुलाबराय ने भक्ति आंदोलन को पराजित मनोवृत्ति के परिणाम के रूप में स्वीकार किया है। आचार्य शुक्ल का मत है— 'अपने पौरुष से हताश जाति के लिए भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था।' बाबू गुलाबराय का कथन है,

“मनोवैज्ञानिक तथ्य के अनुसार हार की मनोवृत्ति में दो बातें सम्भव हैं— या तो अपनी आध्यात्मिक श्रेष्ठता दिखाना या भोग-विलास में पड़कर हार को भूल जाना। भक्तिकाल में लोगों में प्रथम प्रकार की प्रवृत्ति पाई गई।” इसके विपरीत ग्रियर्सन, कीथ, विल्सन, वेबर जैसे अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भक्ति के उदय के उत्स को ईसाई धर्म के मूल में खोजने का हठपूर्वक प्रयास किया है, जो किसी भी दृष्टि से सद्भावना तथा सहज एवं उदात्त मानसिकता का द्योतक नहीं कहा जा सकता। ग्रियर्सन का मानना है कि ईसा की दूसरी-तीसरी शताब्दी में कुछ ईसाई मद्रास आकर बस गए थे जिनके प्रभाव से भक्ति का विकास हुआ। प्रो० विल्सन भक्ति को अर्वाचीन युग की वस्तु सिद्ध करते हुए स्पष्ट करते हैं कि विभिन्न आचार्यों ने अपनी प्रतिष्ठा हेतु इसका प्रचार किया। एक अन्य पाश्चात्य विद्वान् ने तो ‘कृष्ण’ को ‘क्राइस्ट’ का रूपान्तर कहकर अपनी कल्पनाशक्ति का परिचय दिया है। दूसरी ओर कुछ मुस्लिम भक्तों तथा राष्ट्रीयता के स्तर पर दुराग्रहों से ग्रसित व्यक्तियों ने हिन्दी साहित्य में भक्ति आन्दोलन को मुस्लिम संस्कृति के सम्पर्क की देन माना है परन्तु इस प्रकार की समस्त मान्यताएँ नितान्त दुराग्रहपूर्ण एवं भ्रामक हैं। वस्तुतः भक्तिभाव के उदय का मूल स्रोत परम्परागत भारतीय धारणाओं के मंथन द्वारा ही खोजा जा सकता है।

हिन्दी में भक्तिसाहित्य का आरम्भ केवल शासकीय स्थिरता तथा राजनीतिक परिस्थिति का ही परिणाम नहीं है, बल्कि यह एक वैचारिक और सांस्कृतिक आन्दोलन की सुन्दर परिणति है जिसका आरंभ आठवीं-नवीं शताब्दी में हुआ था। इस आन्दोलन के प्रवर्तक आदि शंकराचार्य थे। उन्होंने ब्रह्मसूत्रों की अद्वैतपरक व्याख्या करते हुए वेदान्त दर्शन को एक नवीन जीवन प्रदान किया और शंकर अद्वैत मत का प्रतिपादन किया। इसका प्रथम सूत्र था— ‘ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या’ अर्थात् ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है। दूसरा सूत्र था— ‘सर्वं खल्विदं ब्रह्म’

अर्थात् वास्तव में जो कुछ भी दिखलाई देता है वह सब ब्रह्म है। तीसरा मुख्य सूत्र था— 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात् मैं ही ब्रह्म हूँ। इस प्रकार संपूर्ण जीवजगत को ब्रह्म सिद्ध करने वाला अद्वैत दर्शन एक नवीन चेतना एवं व्यापक दृष्टि लेकर भारतीय समाज में प्रतिष्ठित हुआ। शंकराचार्य की प्रखर बुद्धि और प्रतिभा के सम्मुख कोई भी मत ठहर नहीं सका और एक दिग्विजयी की भाँति उन्होंने अपने अद्वैत दर्शनपरक धर्म को समस्त भारतवर्ष में प्रचारित किया। उन्होंने उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में ऐसे महत्त्वपूर्ण मठों की स्थापना की जिनकी परंपरा आज भी चली आ रही है। इस अद्वैत भावना से भारतवर्ष के उत्तर-दक्षिण तथा पूरब-पश्चिम के कोने सांस्कृतिक एकता के सूत्र में जुड़ गए हैं। शंकर-दर्शन भारत को महान बनाने वाला है तथा हिन्दी का संतकाव्य इससे बहुत अधिक प्रभावित हुआ है।

शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित अद्वैत दर्शन में व्यवहार के स्तर पर कतिपय समस्याएँ उत्पन्न होती हुई अनुभव की गईं। उन्होंने एक ओर अद्वैत मत का प्रतिपादन किया और दूसरी ओर भक्ति को मुख्य कर्तव्य बताया। ऐसी स्थिति में व्यावहारिक जीवन में अनेक प्रकार की शंकाएँ उठने लगीं; यथा, यदि हम ही ब्रह्म हैं तो फिर भक्ति किसकी? संसार मिथ्या है तो फिर सांसारिक क्रिया-कलाप की आवश्यकता क्यों? इसका परिणाम यह हुआ कि शंकराचार्य के पश्चात् अद्वैत दर्शन में किंचित् परिवर्तन और संशोधन हुए तथा उनके आधार पर भक्ति का प्रचार प्रारंभ हुआ। ये परिवर्तित एवं संशोधित दर्शन हैं— रामानुजाचार्य का विशिष्टाद्वैतवाद, विष्णुस्वामी और वल्लभाचार्य का शुद्धाद्वैतवाद, निम्बार्क का द्वैताद्वैतवाद तथा मध्वाचार्य का द्वैतवाद, जिनमें ब्रह्म, जीवन और जगत् के संबंधों की चर्चा करते हुए उनकी अद्वैतता पर विचार किया गया तथा भक्ति की दृढ़ता से स्थापना की गई। इन्हीं सिद्धांतों का प्रचार करने के लिए दक्षिण में भक्ति आन्दोलन चला जिसके प्रमुख प्रवर्तक

आलवार भक्त थे और उत्तर में इनका आधार लेकर रामभक्ति और कृष्णभक्ति के विभिन्न संप्रदायों की स्थापना हुई।

यह स्वतः स्पष्ट है कि भक्ति आंदोलन का सीधा सम्बन्ध दक्षिण के आलवार भक्तों से है तथा इसे दक्षिण से उत्तर की ओर लाने में रामानुज, मध्व, रामानंद आदि आचार्यों ने सेतु का काम किया है। किन्तु इसके साथ ही साथ यह भी उल्लेखनीय है कि उस समय उत्तर भारत का सामाजिक-सांस्कृतिक वातावरण यदि उसे ग्रहण एवं आत्मसात करने के लिए तैयार न होता और समाज के प्रत्येक वर्ग के मध्य इस नए जागरण की गूँज न उठी होती तो आलवारों की प्रेरणा और आचार्यों द्वारा प्रयत्न किए जाने के बावजूद यह कहना कठिन है कि यह आन्दोलन विकसित होता या नहीं। वास्तव में इसके विकास हेतु भूमि काफी पहले से तैयार होती चली आ रही थी। नवीन सामाजिक एवं आर्थिक शक्तियाँ, नए विचार तथा नवीन अवधारणाएँ लेकर मैदान में उतर रही थीं। तेरहवीं शताब्दी में यह आन्दोलन इस्लाम के प्रत्यक्ष संपर्क में आया तथा उसकी चुनौतियों को स्वीकार करता हुआ उससे आन्दोलित, प्रभावित एवं उत्तेजित हुआ। चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य यह जनसाधारण की शक्ति तथा आस्था का आधार लेकर एक विराट् जन-आन्दोलन के रूप में प्रकट हुआ और इसने सिंधु, गुजरात तथा महाराष्ट्र से लेकर बंगाल, असम और उड़ीसा तक सम्पूर्ण भारत देश को भक्तिभाव से प्लावित कर दिया। यही आंदोलन 'भक्ति आंदोलन' के नाम से जाना जाता है।

भक्ति विषयक इस आंदोलन को मात्र तात्कालिक परिस्थितियों ने आपद्धर्म के रूप में जन्म नहीं दिया बल्कि इसकी जड़े अत्यंत गहरी, इसकी परंपरा अत्यंत प्राचीन तथा इसकी भूमिका अत्यधिक पुष्ट और दृढ़ थी। चाहे नाथ-पंथी अलखवादी जोगियों की परम्परा को व्यापकता देने वाले कबीर, रैदास, नानक, दादू आदि निर्गुणिये संत हों अथवा

अनलहक के द्रष्टा सूफियों के अनुयायी ऐननागी कुतुबन, मंझन, जायसी, उसमान आदि हों, चाहे रसावतार कृष्ण और रासेश्वरी राधा का कीर्तन करने वाले प्रेमभक्ति के प्रचारक वल्लभ, चैतन्य, हरिदास, सूरदास, नंददास आदि हों या मर्यादा पुरुषोत्तम पूर्णब्रह्म राम और जगज्जननी सीता के उपासक मर्यादा भक्ति के प्रतिष्ठापक तुलसीदास हों— सभी समान रूप से सांसारिक भोग-विलास के जीवन को निरर्थक, हेय एवं त्याज्य सिद्ध करते हैं। वे सभी उसे अपने-अपने ढंग से प्रवृत्ति और निवृत्ति के उचित सामंजस्य द्वारा आध्यात्मिकता और इहलौकिकता के उन्नत धरातल पर प्रतिष्ठित करने का संदेश देते हैं। सभी जीवन के बाह्याडम्बर का खंडन कर जीवन की बाह्याभ्यन्तर शुद्धता और निर्मलता पर बल देते हैं। सभी प्रेम के विविध भावों का भूत-दया तथा विश्वमैत्री की उदात्त भूमि पर परिष्करण करने का उपाय बताते हैं। इसके अतिरिक्त वर्णाश्रम धर्म से भ्रष्ट, शास्त्रीय मर्यादा से च्युत, विशृंखलित सामाजिक जीवन को पुनः संघटित करने की उमंग एवं स्फूर्तिपूर्ण प्रेरणा प्रदान करते हैं। जीवन की समग्रता पर दृष्टि रखते हुए सभी संत और भक्त मनुष्य को जीने योग्य मार्ग दर्शाते हैं, परिणामतः समाज में चेतना की एक नई लहर दौड़ जाती है तथा प्रमुख क्रियात्मक शक्तियाँ नवीन प्राणवेग से जाग्रतावस्था को प्राप्त करते हुए साहित्य, संगीत एवं अन्य अनेक कलाओं का सृजन करने में प्रवृत्त होने लगती हैं तथा समाज के निम्नतम वर्गों से लेकर सर्वोच्च वर्गों तक में एक विशेष प्रकार का आकर्षण एवं कौतूहल भर देती हैं।

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में निर्गुण संत साहित्य, प्रेममार्गी सूफी भक्ति, प्रेमलक्षणा कृष्णभक्ति तथा मर्यादामार्गी रामभक्ति की प्रेरणा से हिन्दी के सर्वोच्च साहित्य की सर्जना हुई है।

भक्तिकाल में विकसित निर्गुणोपासक संत काव्यधारा का मूल स्रोत सिद्धों और नाथों की वाणी में देखा जा सकता है। इस धारा पर

तथा रोज़ा-नमाज को बाह्याडम्बर मानते हुए उनका तीव्र विरोध किया गया। यही कारण है कि कबीर ने हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों को 'इन दोउन राह न पाई' कहकर कड़ी फटकार लगायी।

संतकाव्य के मुख्य विषयों के रूप में गुरु की महिमा, ब्रह्म, जीव, जगत, माया, जप, ध्यान, ज्ञान, योग, सत्संगति आदि का उल्लेख किया जा सकता है। इसके साथ ही साथ उच्च कोटि की मानवीय भावनाओं, यथा-प्रेम, अहिंसा, शांति, दया, क्षमा, संतोष, समता, सद्भाव, एकता आदि पर इन्होंने बहुत बल दिया है तथा नकारात्मक अथवा असत् वृत्तियों से दूर रहने की शिक्षा दी है। इन्होंने निरंतर अहंकार, निंदा, घृणा, द्वेष, ढोंग तथा छल न करने के लिए मनुष्यों को समझाया है तथा कामिनी-कंचन के पीछे न दौड़ने व भेदभाव से दूर रहने की प्रेरणा दी है। संक्षेप में इन संतों ने व्यक्ति की 'कथनी' और 'करनी' में अंतर न किए जाने की ओर संकेत किया है। सदाचार पर बल दिये जाने के कारण संतकाव्य यद्यपि उपदेशप्रधान हो गया है तथापि उसमें सात्विकता की प्रधानता है। मनोविकारों के परिष्कार के साथ उनका उदात्तीकरण भी संतकाव्य में पूर्णतया अनुभव किया जा सकता है।

संतकाव्यधारा के आदि स्रोत गोरखनाथ कहे जाते हैं पर भक्तियुग में सर्वप्रथम नामदेव की पदावली के रूप में संतकाव्य मिलता है किन्तु उसका प्रभाव अत्यंत सीमित था। इस काव्यधारा के प्रवर्तक तथा व्यापक प्रभाव डालने वाले कबीर थे। निर्गुणोपासक संतों में कबीर के साथ-साथ अनेक प्रसिद्ध संत हुए जिनमें-रैदास, गुरुनानक, धर्मदास, दादू, रज्जब, मलूकदास, सुंदरदास, चरनदास, सहजोबाई, धना, पीपा, प्राणनाथ आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन संतों ने लोकजीवन को स्वच्छ एवं अध्यात्मपरक बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया जिससे मध्यकाल में भारतीय जनता के मध्य आचरण की शुद्धता, वचन और कार्य की सत्यता, निष्ठा, अलौकिक शक्ति, पर-विश्वास आदि गुणों का विकास एवं प्रसार हुआ।

प्रेममार्गी सूफी भक्ति हिन्दू जीवन और धर्म के निकट है। संत कवियों की ही भाँति सूफी मुसलमान कवियों ने भी हिन्दू-मुस्लिम संस्कृतियों के समन्वय का प्रयास किया। सूफियों में कष्टरता की भावना नहीं मिलती, बल्कि इनमें सहृदयता कूट-कूट कर भरी पड़ी है। भक्तिकाल की यह शाखा सूफी प्रभाव से वंचित नहीं, अतः यहाँ भी कष्टरता का कोई चिह्न नहीं मिलता, बल्कि यहाँ तो कोमल रागात्मक भावना प्रधान रूप में उपलब्ध होती है। संतों की भाँति इस शाखा के अतर्गत आने वाले सूफी कवि भी ईश्वर को प्रेमपात्र के रूप में देखते हैं किन्तु ज्ञानाश्रयी संतों की तरह वे ब्रह्म या ईश्वर को प्रेमी या पति नहीं मानते, ये स्वयं को ही प्रेमी मानते हैं और ब्रह्म की कल्पना प्रियतम के रूप में करते हैं। लौकिक प्रेम के सहारे आध्यात्मिक प्रेम तत्त्व का आभास प्रेममार्गी काव्यधारा में मिलता है। इसमें हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति का मधुर मिलन देखा जा सकता है। इसके अंतर्गत भारतीय सिद्धान्तों की रचना करते हुए सूफी सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि सूफी मत के समस्त सिद्धांत प्रेमकाव्यों में प्रस्फुटित हैं।

प्राचीन काल से ही प्रेमाख्यान काव्यों की एक सुदीर्घ परंपरा प्राप्त होती है। अनेक हिन्दू कवियों ने प्रेमाख्यान काव्यों की रचना की है। संस्कृत साहित्य में भी पुरुरवा-उर्वशी, कच-देवयानी, दुष्यंत-शकुन्तला आदि की प्रेमकथाएँ प्रचलित थीं और 'संदेशरासक', 'भविष्यत् कथा' आदि अपभ्रंश रचनाएँ भी उसी परंपरा की शृंखलाएँ हैं। भक्तियुग में भी हिन्दू कवियों द्वारा रचित रुक्मिणी मंगल, माधवानल कामकन्दला, ढोला मारुरा दूहा आदि रचनाएँ प्रेमाख्यान काव्य हैं किन्तु उनमें प्रेमकथा का शुद्ध रूप दृष्टिगत होता है। उनके माध्यम से परमात्म-भक्ति का संदेश अथवा संकेत नहीं मिलता। परन्तु सूफी प्रेमाख्यानों में परमात्मा के प्रति प्रेमभाव का प्रचार किया गया है। इनमें लौकिक प्रेमकथा का आधार लेकर आत्मा और परमात्मा के प्रेम का तथा परम प्रिय को प्राप्त करने में विघ्न बाधाओं के साथ संघर्ष का चित्रण किया गया है। प्रतीक रूप में

अनेक बातें जो संतों द्वारा साधना के रूप में कही गई हैं उन बातों को सूफी संत कवियों ने कथा-कहानी के माध्यम से प्रकट करने का प्रयास किया है। यथा, ईश्वर के अलौकिक रूप का वर्णन, गुरु का माहात्म्य, परमात्मा के प्रति आकर्षण और विरहानुभूति, साधना की कठोरता, मन की वृत्तियों तथा माया-मोह के साथ संघर्ष और अन्ततोगत्वा प्रिय रूप परमात्मा से मिलन। ये समस्त बातें संतकाव्य में भी देखने को मिलती हैं तथा सूफीकाव्य में भी। जिस प्रकार संतों की योग साधना में सात्विक भोजन ग्रहण करने तथा माया-मोह को त्याग कर काया को शुद्धता समन्वित बनाने की बात है उसी प्रकार के संकेत सूफियों द्वारा भी दिए गये हैं। ये बातें प्रायः नाथ संप्रदाय की हठयोग साधना के आधार पर हैं परन्तु प्रेम की भावना सूफीमत की है, जिसमें ब्रह्म या ईश्वर को प्रियतम स्त्री के रूप में तथा जीव या साधक को पुरुष प्रेमी के रूप में स्वीकार किया गया है।

निर्गुणोपासक संतों की भाँति सूफियों ने भी एक ही ईश्वर को माना है। इन्होंने मुख्य रूप से प्रेम को प्रधान माना है, जैसा कि इस शाखा के नामकरण से ही स्पष्ट हो जाता है। सूफीमत में माया तो नहीं पर पथभ्रष्ट करने के लिए शैतान की कल्पना अवश्य की गई है और इससे बचने के लिए गुरु (पीर) के महत्त्व की ओर संकेत किया गया है। उद्देश्य की दृष्टि से प्रेममार्गी सूफी कवियों को सफल माना जा सकता है क्योंकि जिस सम्मिलन की भावना से प्रेरित होकर कबीर आदि संतों ने अपनी कड़ी फटकार लगाते हुए दुर्गुणों को दूर करने की कल्पना की थी उसका व्यावहारिक रूप इन प्रेममार्गी कवियों ने प्रस्तुत किया है। हिन्दू जीवन की कहानियों द्वारा मुसलमान कवियों ने आध्यात्मिक भावों को उपस्थित किया है जिससे इनके हृदय की विशालता का परिचय मिलता है। यही प्रेम जीवन में आकर्षण एवं जिजीविषा को उत्पन्न करता है। प्रेममार्गी धारा के अंतर्गत ईश्वर को ही प्रेम के सहारे प्राप्त कराया गया है, जिसे लोगों ने जीवन का लक्ष्य माना है।

सूफी काव्यारचनाओं का मुख्य विषय प्रेम है। रचनाविधान की दृष्टि से फारसी की मसनवी पद्धति को अपनाते हुए सभी सूफी कवियों ने प्रायः अवधी भाषा एवं दोहा-चौपाई शैली का प्रयोग किया है जिसका पूर्ववर्ती रूप मुल्ला दाऊद के 'चंदायन' में प्राप्त है। सूफी कवियों द्वारा लिखे गए प्रबंधकाव्य लोकगाथात्मक भी हैं, काल्पनिक भी और ऐतिहासिक भी; साथ ही इनमें पौराणिक प्रसंग भी बिखरे पड़े हैं। इन कवियों ने भारतीय संस्कृति, भारतीय आचार-विचार और भारतीय आदर्श का पूरा ध्यान रखा है। इनकी प्रेमकथाओं में कहीं-न कहीं अन्योक्ति, प्रतीक या रूपक के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि वह प्रेमकथा लौकिक न होकर अलौकिक है। प्रायः इन कथाओं में चमत्कारिक और अलौकिक प्रकार की घटनाओं का वर्णन है। ये प्रेमकथाएँ जिनका आरम्भ आदिकाल में हुआ पूरे मध्यकाल तक चलती रहीं। भक्तिकाल और रीतिकाल दोनों में सूफी प्रेमाख्यानकों की रचना हुई परन्तु भक्तियुग की रचनाएँ अधिक प्रख्यात एवं महत्त्वपूर्ण सिद्ध होती हैं। इस युग के सूफी प्रेमाख्यानक कवियों के रूप में मुल्ला दाऊद, कुतुबन, मलिक मुहम्मद जायसी, मंझन, शेख उस्मान, शेख नबी, कासिम शाह, जान कवि, नूर मुहम्मद, शेख निसार आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्ध और समर्थ कवि जायसी माने जाते हैं जिन्होंने प्रेममार्गी भक्तिकाव्यधारा का सफल प्रतिनिधित्व करते हुए 'पदमावत' की रचना की, जो उनकी प्रसिद्धि का मूल आधार है।

कृष्णभक्ति के प्रधान हेतु एवं आलम्बन श्रीकृष्ण ने भारतीय मानस को जितना प्रभावित किया है कदाचित् उतना किसी अन्य चरित्र ने नहीं। प्राचीन काल से लेकर अब तक उनके व्यक्तित्व ने धर्म, साहित्य तथा अन्य ललित कलाओं जैसे संगीत, चित्र और मूर्ति को विविध रूपों में गहराई से प्रभावित किया है। महाभारत में उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व

उभर कर हमारे समक्ष उपस्थित होता है। श्रीमद्भागवत में वे और भी प्रियतर रूप में अंकित हुए हैं। मध्यकाल में कृष्णभक्तों से पूर्व संस्कृत और प्राकृत में उन्हें लेकर प्रचुर रचनाओं का सृजन किया गया है किन्तु हिन्दी काव्य के क्षेत्र में पूर्ववर्ती कवियों में से जयदेव के गीतगोविन्द, मैथिल कोकिल विद्यापति की पदावली तथा बँगला के चंडीदास की रचनाओं द्वारा राधा-कृष्ण के रूप-निर्माण में विशेष सहायता प्राप्त हुई है। दार्शनिक एवं धार्मिक दृष्टि से इन कवियों को निंबार्काचार्य, मध्वाचार्य, चैतन्य महाप्रभु तथा वल्लभाचार्य ने विशेष रूप से प्रभावित किया। मुख्य रूप से श्रीमद्भागवत से प्रेरणा प्राप्त करके इन आचार्यों ने अपनी जो व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं उनमें कृष्ण के सगुण रूप की उपासना और भक्ति का मार्ग बताया गया है।

वल्लभाचार्य ने श्रीमद्भागवत की तत्त्वबोधिनी टीका लिखी तथा पुष्टिमार्ग का प्रचार किया। वल्लभसम्प्रदाय में कृष्ण के बालरूप की उपासना है। वल्लभाचार्य तथा उनके पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ ने अपनी भक्ति के प्रचार हेतु आठ विशिष्ट भक्तों का चयन किया जिन्हें बाद में अष्टछाप कवियों की संज्ञा से अभिहित किया गया। इनके नाम हैं—कुम्भनदास, सूरदास, परमानन्ददास, गोविन्दस्वामी, कृष्णदास, नन्ददास, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास। इनमें प्रथम चार वल्लभाचार्य के शिष्य थे और शेष चार विट्ठलनाथ के। आचार्य वल्लभ ने जहाँ भगवान कृष्ण के बालरूप की आराधना पर बल दिया वहीं उनके उत्तराधिकारी गोसाईं विट्ठलनाथ ने बालभाव के साथ-साथ कांता भाव को भी समाविष्ट किया। सगुणोपासना निवृत्ति या जीवन से पलायन की भावना को लेकर नहीं चली, अपितु जीवन के समस्त सुख-भोगों को अपनाकर तथा उन्हें भगवान को समर्पित कर जीवन व्यतीत करने की प्रवृत्ति को उसने विकसित किया। नित्यप्रति भगवान के कीर्तन और सेवा में संलग्न रहने

वाले इस संप्रदाय के भक्तों ने भगवान को श्रीकृष्ण के रूप में प्रतिष्ठित किया और समस्त भावों से उनकी भक्ति का विधान किया, किन्तु मुख्य रूप से उसमें वात्सल्य तथा कांता भाव का प्राधान्य है। इसी प्रकार मध्ययुग में हरिदासी, राधावल्लभ, गौड़ीय आदि अन्य धार्मिक संप्रदायों द्वारा हिन्दी के कृष्णभक्ति काव्य के लिए एक सुदृढ़, व्यापक एवं आकर्षक धार्मिक व सांस्कृतिक भूमिका बनाई जा चुकी थी।

कृष्णभक्त कवियों की दृष्टि में जीवन में आनंद उत्पन्न करने के लिए कृष्ण का आनन्दस्वरूप ही उपयुक्त सिद्ध हुआ है। भक्तों की साधना के लिए प्रेम अनिवार्य तत्त्व माना गया है, अतः कृष्णभक्ति को प्रेमलक्षणा भक्ति के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। वल्लभाचार्य ने यह स्पष्ट कर दिया है कि भक्त की प्रवृत्ति भगवान की ओर तभी हो सकती है जब भगवान का अनुग्रह उसे प्राप्त हो जाये। बिना उसके अनुग्रह के कोई भक्ति की भावना से प्रेरित हो ही नहीं सकता है। इसे ही 'पुष्टि' कहकर पुकारा गया है।

कृष्णभक्त कवियों का उद्देश्य जीवन के प्रति अनुराग उत्पन्न करना है। इनमें दास्यभाव अथवा मर्यादा के प्रति विशेष आकर्षण की भावना दृष्टिगत नहीं होती, बल्कि इस भक्ति के अंतर्गत भावनाओं को भगवान के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है मानो वहाँ कोई दुराव-छिपाव नहीं अपितु परस्पर सखा-सखि का भाव हो। कृष्णभक्त कवियों ने कृष्ण को ब्रह्म का प्रतीक माना है और राधा की कल्पना आदिशक्ति के रूप में की है। उनकी मुरली योगमाया है। भारतीय दर्शन का शुद्धाद्वैत इस मार्ग में मिलता है और वल्लभाचार्य की वह भावना मिलती है जिसके अनुसार ब्रह्म, जीव, और जगत् को सत्य माना जाता है। यहाँ श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान और पूर्णब्रह्म के रूप में उपस्थित रहते हैं। माया की चर्चा भी मिलती है, जो दुविधा में डालकर जीव को पथभ्रष्ट

करती है। कृष्णभक्ति में जीव की तीन कोटियाँ स्वीकार की गई हैं—संसारि, शुद्ध तथा मुक्त।

कृष्णभक्त कवियों द्वारा अपनी काव्यरचनाओं में ब्रजभाषा का व्यवहार किया गया है। यह उस भूमि की भाषा है जहाँ इनके आराध्य देव कृष्ण ने जन्म लिया, उस स्थान की भाषा है जहाँ उनके आचार्यों ने अपनी गद्दी स्थापित की, उस स्थान की भाषा है जहाँ दूर-दूर से आकर इन्होंने निवास किया। ऐसी स्थिति में इस भाषा के प्रति इनका मोह होना स्वाभाविक था। इन्होंने ब्रजभाषा का विकास कर उसे प्रौढ़ता की कोटि तक पहुँचा दिया। इसे इन कवियों ने इस सीमा तक व्यापक और व्यञ्जक बना दिया कि आगे चलकर भूषण और बिहारी ने जो शिवाजी तथा महाराज जयसिंह के आश्रित थे, इस प्रांत से बहुत दूर रहकर इसे स्वीकार किया। इस प्रकार रीतिकाल में ही नहीं वरन् बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक इसका प्रभाव बना रहा और खड़ी बोली को अपने को स्थापित करने के लिए इससे घोर संघर्ष करना पड़ा। कृष्णभक्त कवियों में से कुछ ने खंडकाव्यों की भी रचना की है किन्तु इनका विशेष झुकाव पद-रचना की ओर था। ये पद संगीत के तत्त्वों से पूर्ण हैं। भक्ति की तन्मयता के कारण यद्यपि इनकी अभिव्यञ्जनाओं में आडम्बरहीनता लक्षित की जाती है, पर इनका झुकाव अलंकरण की ओर रहा है। कवियों द्वारा एक से एक सुंदर एवं प्रभावशाली उपमानों का संधान किया गया है। सूरदास की रमणीय उपमाओं एवं उत्प्रेक्षाओं की तो बात ही कुछ और है। सूरदास में सांगरूपक भरे पड़े हैं किन्तु जिन स्थलों पर ये बहुत लम्बे हो गए हैं वहाँ एकरूपता कहीं-कहीं कृत्रिमतायुक्त एवं आरोपित-सी प्रतीत होती है। दृष्टिकूट दुरुह-काव्य का सफल उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जिनमें शब्द-क्रीड़ा तथा चमत्कार की प्रधानता है। इन कवियों

में पौराणिक संदर्भों की भी न्यूनता नहीं है। कृष्णभक्ति काव्य को मूलतः रसकाव्य की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है।

मध्यकालीन मर्यादामार्गी रामभक्तिधारा का मूल लक्ष्य राम के जीवन से सामाजिक आदर्श ग्रहण कर उसका प्रचार करना था। इस युग का रामकाव्य रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद से प्रेरणा प्राप्त कर स्वामी रामानन्द द्वारा प्रवर्तित श्री वैष्णव संप्रदाय के आधार पर रचा गया। रामभक्तिधारा के मूलाधार वाल्मीकि रामायण, श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता और अध्यात्म रामायण हैं। इस परंपरा में सबसे पहले राम के चरित्र का वर्णन पृथ्वीराजरासो के दशावतार प्रसंग में मिलता है। वस्तुतः भक्तियुगीन रामकाव्य का आरंभ विष्णुदास कृत रामायण कथा से माना जाना चाहिए जिसकी रचना सन् १४४२ ई० में हुई थी। ग्वालियर के रहने वाले विष्णुदास ने वाल्मीकि रामायण के आधार पर रामायण कथा लिखी। उनका यह काव्य कविता की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं, परन्तु रामकथा और राम के चरित्र का लोक में प्रचार करने वाला यह प्रथम कथा-काव्य है। इस परंपरा में दूसरे महत्त्वपूर्ण कवि ईश्वरदास हैं जिन्होंने रामकथा से सम्बन्ध 'भरत मिलाप' और 'अंगदपैज' नाम के दो छोटे-छोटे काव्य लिखे। इस परम्परा के सर्वाधिक सक्षम एवं हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि गोस्वामी तुलसीदास हैं, जिन्हें हिन्दी रामकाव्य का मूलस्रोत माना जाना चाहिए।

रामभक्तिशाखा के अंतर्गत दार्शनिक तथा धार्मिक सिद्धान्तों की विवेचना की गई है। वैष्णव धर्म के अनुकूल होने के कारण इसमें सेवक-सेव्य भाव पर अधिक बल दिया गया है। इसके संपर्क में आने वालों ने ज्ञान और कर्म की अपेक्षा भक्ति की प्रधानता को प्रतिपादित किया है। इस भक्तिधारा में राम कहीं तो केवल मनुष्य रूप में हैं और कहीं पूर्ण ब्रह्म के रूप में। रामकाव्य मूलतः आस्था का काव्य है। राम के

जीवन को केन्द्र बनाकर चलने वाली कथा सर्वप्रकारेण अध्येताओं एवं श्रोताओं के मर्म को स्पर्श करने वाली है। रामकाव्य के गौण विषयों में धर्म, भक्ति, राजनीति, समाजनीति आदि हैं। यह काव्य दो धाराओं में प्रवाहित होता हुआ देखा जाता है— एक मर्यादावादी रामभक्ति काव्यधारा तथा दूसरी रसिकोपासना की काव्यधारा। मर्यादावादी रामकाव्यधारा में तुलसी के रामचरितमानस का प्रभाव अक्षुण्ण है। रसिकोपासक संप्रदाय के रामभक्त कवियों पर समकालीन कृष्णकाव्य का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगत होता है। रामभक्ति धारा का मुख्य उद्देश्य विभिन्न वैष्णव और शैव संप्रदायों का समन्वय तथा निर्गुण और सगुण की एकरूपता का प्रतिपादन करना रहा है। मर्यादावादी परंपरा के काव्य प्रायः प्रबंध रूप में लिखे गए, जबकि रसिक परंपरा की अधिकांश रचनाएं गेय रूप में हैं। गोस्वामी तुलसीदास के अतिरिक्त इस भक्तिधारा के अन्य कवि उतने प्रख्यात नहीं हुए जितने कृष्णभक्तिधारा के।

कला की दृष्टि से रामकाव्य अपनी समकालीन दोनों प्रमुख भाषाओं—अवधी तथा ब्रज में रचा गया। इस शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसी का अलंकारों पर असाधारण अधिकार था तथा दोहा, चौपाई, कवित्त, सवैया, छप्पय आदि इनके प्रिय छन्द रहे हैं। रस की अनुभूति जैसी इन्हें थी वैसी कम कवियों में ही लक्षित की जाती है। ये काव्य—मर्मज्ञ ही नहीं, शास्त्रज्ञ भी थे। इनकी काव्य रचनाओं में सत्यं, शिवं और सुन्दरं— इन तीनों भावों की समान रूप से अभिव्यक्ति हुई है। तुलसीदास के इस प्रकार के वैशिष्ट्य के कारण रामभक्तिधारा हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक प्रतिष्ठित समझी जाती है।

भक्तियुगीन निर्गुणोपासक (संतकाव्य तथा प्रेमाख्यान काव्यधारा) तथा सगुणोपासक (कृष्णकाव्य तथा रामकाव्यधारा) भक्तकवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा भक्तिकालीन हिन्दी काव्य को समृद्ध किया और इन चारों

काव्यधाराओं का ऐसा प्रभाव पड़ा कि इनकी परम्परा एक प्रकार से रीतियुग में भी चलती रही। कतिपय भक्तिकालीन कवियों द्वारा उन नवीन प्रवृत्तियों का सूत्रपात हुआ जो रीतियुग में विशेष रूप से उभर कर आईं। प्रीति, शृंगार, वीर और नीति काव्य की प्रवृत्तियों का रीतिकाल में अधिक बोलबाला रहा परन्तु साथ ही साथ परम्परा प्रचलित प्रवृत्तियाँ भी निरन्तर पोषित होती रहीं। भक्तिकाल में जहाँ भक्ति-भावना काव्य की मूल चेतना थी वहाँ रीतिकाल में काव्य की मूल चेतना शृंगार और कला-विलास बन गई, जिसका प्रभाव लगभग सभी धाराओं पर पड़ता हुआ परिलक्षित होता है।

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल का उत्तरार्द्ध रीतिकाल के नाम से जाना जाता है। इस युग में सामान्यतः शृंगारपरक लक्षण-ग्रंथों की रचना हुई। नामकरण की दृष्टि से यह काल विद्वानों के बीच पर्याप्त मतभेद का विषय रहा है। मिश्रबन्धुओं (गणेश बिहारी मिश्र, श्याम बिहारी मिश्र तथा शुकदेव बिहारी मिश्र) तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जहाँ इसे क्रमशः 'अलंकृत काल' और 'रीतिकाल' कहा है वहाँ पं० विश्वनाथ मिश्र ने इसे 'शृंगारकाल' की संज्ञा दी है। साहित्येतिहासकार डॉ० रामशंकर शुक्ल 'रसाल' इसे 'कलाकाल' का नाम देना अधिक उपयुक्त समझते हैं। इस युग में शृंगारिक वर्णन अधिक हुआ तथा साहित्य में कला-चेतना का विकास हुआ। इस काल के साहित्य की मुख्य विशेषता काव्यशास्त्रीय परिपाटी पर रचना करना था। यह शास्त्रीय परिपाटी काव्य, चित्रकला तथा संगीतकला सभी में देखने को मिलती है। रीति अथवा परिपाटी में बँधकर चलने के कारण इस युग को रीतिकाल कहना ही अधिक तर्क संगत प्रतीत होता है। रीति का आधार लेकर कुछ विद्वानों ने इस काल के कवियों को रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध तथा रीतिमुक्त—इन तीन कोटियों में विभक्त किया है।

रीतिबद्ध कवि वे हैं जिन्होंने किसी रीति विशेष को ही दृष्टि में रखकर अपने काव्य की सर्जना की है। उनकी दृष्टि अधिकतर काव्य के भावपक्ष ओर विचारपक्ष पर न रहकर कलापक्ष पर ही केन्द्रित रही है। उनका उद्देश्य आचार्य बनना न होकर केवल काव्यशास्त्र के कुछ काव्य सिद्धांतों को सामने रखकर काव्य रचना करना मात्र होता था। वे उक्ति में सब प्रकार के चमत्कारों की प्रतिष्ठा करते थे और उसके लिए वे स्वतंत्र रहते थे। इन रीतिबद्ध कवियों में चिंतामणि, भूषण, मतिराम, कुलपति, देव, रसलीन, भिखारीदास, दूलह, पद्माकर, ग्वाल आदि मुख्य हैं।

रीतिसिद्ध कवियों की श्रेणी में वे कवि आते हैं जिन्होंने काव्यांगों का विवेचन करने वाला कोई लक्षण—ग्रंथ तो नहीं रचा फिर भी मुक्तक काव्य रचते समय इनके मन—मस्तिष्क में रीति—परंपरा और काव्यशास्त्रीय लक्षणों का ध्यान अवश्य रहा है। कुछ इतिहासकारों ने ऐसे कवियों की गणना प्रायः रीतिबद्ध परम्परा के अंतर्गत ही की है। रीतिसिद्ध परम्परा में प्रमुखतः बिहारी का नाम आता है। बिहारी को रीतिकाल का प्रतिनिधि कवि माने जाने का मुख्य कारण यह है कि ये एक ओर तो रीतिबद्ध कवियों की सीमा का परोक्षतः अत्यंत सूक्ष्मता एवं कुशलता के साथ संस्पर्श करते हैं और दूसरी ओर रीतिमुक्त कवियों की स्वच्छन्द प्रवृत्तियों की सीमा का भी स्पर्श करते हुए अनुभव किए जाते हैं। इन दोनों धाराओं का समन्वित रूप ही रीतिसिद्धता अथवा रससिद्धता है।

रीतिमुक्त कवियों की कोटि में ऐसे कवियों की गणना की जाती है जिन्होंने प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी भी रूप में रीतिकालीन अर्थात् विशुद्ध काव्यशास्त्रीय परम्पराओं का पालन नहीं किया है। इन्होंने समस्त वादों से दूर रहकर अपनी कविता में संयत एवं स्वच्छन्द प्रेम का चित्रण

किया है। शृंगार रस को प्रमुख प्रश्रय दिये जाने के कारण ही इनकी परंपरा के साथ 'रीति' शब्द जुड़ा हुआ है। शृंगार रस से सम्बन्धित इनकी रचनाओं में संयोग तथा वियोग दोनों पंक्षों का संयत एवं स्वाभाविक चित्रण हुआ है। इनकी रचनाओं में तत्कालीन सामान्य सांस्कृतिक भावना भी देखी जा सकती है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अपनी रचनाओं में कवि प्रसिद्धियों एवं रूढ़ियों को तो अपनाया है, किन्तु रीति-परंपरा को नहीं। रीतिमुक्त कवियों में घनानन्द, आलम, बोधा, ठाकुर, द्विजदेव आदि विशेष प्रसिद्ध हैं।

रीतिकालीन कविता का युग स्थूल रूप से मुगल शाहजहाँ के शासन की समाप्ति से लेकर मुगल सम्राट बहादुरशाह के समय तक का माना जाता है। इसके समाप्त होते-होते अंग्रेजों का शासन प्रारंभ हो जाता है। इस बीच मुगल बादशाहों के कला और साहित्य-प्रेम के कारण दरबारों में कवियों और कलाकारों का विशेष सम्मान बढ़ा। काव्य-चर्चा के लिए छोटे-छोटे रजवाड़े भी केन्द्र बन गए। समाज के मध्य भी कला और काव्य के प्रति प्रेम विकसित हो गया था। यह युग यद्यपि रीति-शृंगार का युग था तथा रीतिकवि अलंकार शास्त्र के ज्ञान के आधार पर चमत्कारी रचना करते थे किन्तु फिर भी भक्तियुग की धाराएँ भी इस युग में निरंतर अपना योगदान देती रहीं।

रीतिकालीन साहित्य की सृष्टि सामन्तीय वातावरण के मध्य हुई अतः तत्कालीन राजदरबारी कवियों से 'स्वान्तः सुखाय' रचना की आशा नहीं की जा सकती है। प्रदर्शन प्रवृत्ति प्रधान रीतियुग के कवियों ने भक्तिकालीन साहित्य सम्बन्धी आदर्शों 'संतन को कहा सीकरी सों काम तथा 'कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना। सिर धुनि गिरा लगत पछिताना' को छोड़कर अपने स्वामी के मनस्तोष हेतु काव्य-सर्जना की। उनकी वाणी में सूर और तुलसी जैसी तन्मयता, सात्विकता, ऊर्जस्विता और

उदात्त चेतना नहीं है। भाव-सौन्दर्य की अपेक्षा उन्हें रूप-सौन्दर्य अधिक आकर्षित करता रहा।

रीतिकालीन कवियों की सर्वाधिक प्रमुख प्रवृत्ति रीति-निरूपण की थी। इसके साथ ही विलासी आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के उद्देश्य से चूँकि इन कवियों ने उनकी रुचि के अनुरूप सामान्यतः शृंगारिक रचनाएँ कीं, अतः शृंगारिकता की प्रवृत्ति इस काल में सर्वत्र प्रचुरता के साथ लक्षित की जा सकती है। आलंकारिकता, रीतिकालीन कविता की एक अन्य प्रधान प्रवृत्ति है। प्रदर्शन, चमत्कार तथा रसिकता प्रधान युग में उक्ति चमत्कार द्वारा अध्येता एवं श्रोता को आकृष्ट कर लेना इस युग के कवियों का लक्ष्य तथा सफलता का मापदण्ड बन गया था।

रीतिकाव्य में भक्ति तथा नीति विषयक सूक्तियाँ भी मिलती हैं किन्तु उनके आधार पर रीतिकवि को न तो अनन्य भक्त कहा जा सकता है और न राजनीति निष्णात। इनका मुख्य उद्देश्य तो था किसी आश्रयदाता या रसिक को रिझाना। निःसन्देह ही देव, मतिराम तथा बिहारी आदि रीतिकवियों के भक्ति सम्बन्धी छन्दों पर 'राधिका कन्हाई सुमिरन कौ बहानौ है' की उक्ति चरितार्थ होती है। काव्य-रूप की दृष्टि से इस युग के कवियों में मुक्तक काव्य-रचना की विशेष प्रवृत्ति दिखाई देती है, प्रबंध रचना की प्रवृत्ति कम। कलागत वैशिष्ट्य की दृष्टि से रीतिकाल ब्रजभाषा की चरमोन्नति का काल है। ब्रजभाषा का जितना संस्कार और प्रांजल निखार इस युग के कवियों ने किया वैसा अन्य किसी युग में नहीं हो सका। इस युग में भाषा में इतनी प्रौढ़ता आ गई कि भारतेन्दु काल तक कविता के क्षेत्र में इसका आधिपत्य रहा तथा आगे के समय में भी इसके प्रति मोह बना रहा।

रीतियुग में कवि-कर्म तथा आचार्य-कर्म समानान्तर चलते रहे, फलतः रीतिमुक्त कवियों को छोड़कर प्रायः इस काल के सभी

कवियों ने संस्कृत के लक्षण-ग्रंथों के आधार पर रस, अलंकार, छन्द, काव्यगुण-दोष, रीति आदि का विस्तृत वर्णन करते हुए लक्षणग्रंथों की रचना की। रीतिकालीन काव्य में जीवन के दोनों पक्षों—संघर्ष एवं आनन्द का सफलतापूर्ण चित्रण किया गया है। यही कारण है कि इस युग में शृंगार की प्रधान धारा के साथ-साथ क्षीण रूप में वीर रस की धारा भी बहती रही है। भूषण, सूदन, पदमाकर आदि कवियों ने अत्यन्त ओजस्विनी भाषा में वीररसात्मक काव्यसृष्टि की। इसके साथ ही साथ आलोच्यकालीन काव्य में प्रकृति का चित्रण नायक-नायिका की मनोदशा के अनुकूल ही किया गया है। प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण षट्क्रतु वर्णन तथा बारहमासे की चित्रण-पद्धति पर हुआ है। रीतिकाव्य में प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र नहीं मिलते। रीति कवि प्रकृति के प्रति प्रायः तटस्थ सा दिखाई पड़ता है।

रीतिकाव्य द्वारा सामन्तवादी युग में भी साहित्यिक अभिरुचि जाग्रत हुई, ग्रामीण क्षेत्रों में भी इस काव्य का प्रचार हुआ तथा काव्य सौन्दर्य, अलंकार एवं नायिका-भेद-वर्णन लोकव्यापी हो गया। रीतिकालीन कवियों का प्रधान लक्ष्य जीवन तथा यौवन के वास्तविक एवं रमणीय सौन्दर्य का अंकन करना रहा है। वर्णन के बीच यत्र-तत्र दृष्टिगत होने वाली आध्यात्मिकता या तो परम्परागत संस्कारवश आई है अथवा सामाजिक आघातों से बचने के लिए कवि ने उसे कवच बनाया है। नायिका-भेद तथा रस-निरूपण में जो चित्र अंकित किए गए हैं वे किसी अतीन्द्रिय लोक के नहीं इसी लोक के हैं। डॉ० भगीरथ मिश्र के शब्दों में— “ऐसा लगता है कि रीति-कविता के रचयिता यौवन और बसन्त के कवि हैं। जीवन का फूलता हुआ सुघर रूप ही उन्हें प्रिय है। पतझड़, संघर्ष और विनाश सम्भवतः स्वतः जीवन में इतने घोर रूप में विद्यमान था कि कवि

काव्य में भी उसको उतार कर नैराश्य और निवृत्ति की भावना को जगाना नहीं चाहता है। वह तो फूलते-फलते जीवन का भ्रमर है। उसने जीवन का एक ही स्वरूप लिया, एक ही पक्ष लिया, यह इस धारा के कवि की संकीर्णता है, दुर्बलता है और एकांगिता है। परन्तु जिस पक्ष को इसने लिया है उसके चित्रण में उसने कोई कसर नहीं रखी। उसके समस्त वैभव और विलास के चित्रण में उसने कलम तोड़ दी है।”

रीतिकालीन कवियों का जीवनदर्शन निरसन्देह ही रूढ़िबद्ध, अवैयक्तिक एवं यांत्रिक है। इनके द्वारा अंकित जीवन-चित्र अत्यंत संकीर्ण तथा सीमित हैं किन्तु वे विश्वसनीय एवं मनोरम अवश्य हैं। इस प्रकार अपने समग्र रूप में रीतिकालीन काव्य जीवन के संघर्ष, लक्ष्य तथा आनंद का काव्य है। शास्त्र की दृष्टि से भले ही रीतिकालीन कविता अधिक महत्त्वपूर्ण न हो परन्तु कवित्व की दृष्टि से यह अत्यंत मधुर तथा मनोहर है। यही नहीं, भावपक्ष एवं कलापक्ष दोनों दृष्टियों से रीतिकालीन काव्य का हिन्दी साहित्य के इतिहास में अविस्मरणीय योगदान है तथा उसका साहित्यिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व अक्षुण्ण है।



कवि-परिचय

कबीरदास

कबीरदास हिन्दी साहित्य की निर्गुणभक्तिकाव्यधारा के महत्त्वपूर्ण कवि हैं। कबीर का जन्म अधिकांश विद्वानों ने संवत् १४५५ वि० स्वीकार किया है। उनका जन्म-स्थान वाराणसी का लहरतारा स्थान माना जाता है। नीरु और नीमा, जुलाहा दम्पति इनके पालन-पोषणकर्त्ता के रूप में प्रसिद्ध हैं। कबीर ने अपने ग्रन्थों में स्वयं को जुलाहा अथवा कोरी कहा है। मुसलमानी वातावरण में पोषित होने के बावजूद उनमें हिन्दू संस्कारों की विशिष्ट छाप थी। नाभादास कृत 'भक्तमाल' में रामानन्द के प्रमुख शिष्यों में कबीर की गणना की गयी है। इनकी पत्नी का नाम लोई माना जाता है। डॉ० रामकुमार वर्मा धनियाँ अथवा रमजनियाँ को भी इनकी पत्नी के रूप में स्वीकार करते हैं। इनके पुत्र का नाम कमाल तथा पुत्री का नाम कमाली मिलता है। जीवन के अन्तिम समय में कबीर काशी छोड़कर मगहर चले गये जहाँ संवत् १५७५ वि० में इनकी मृत्यु हुई।

कबीर का साहित्य बीजक, कबीर ग्रन्थावली, कबीर वचनावली, संतकबीर आदि कृतियों में संकलित है। सिक्खों के प्रसिद्धग्रन्थ 'गुरुग्रन्थसाहब' में भी कबीर की चुनी हुई रचनाएँ संकलित हैं। कबीर का साहित्य रमैनी, साखी और सबद में उपलब्ध है। रमैनी में सृष्टि, जीव

और जगत् की स्थिति का विश्लेषण है। इसमें चौपाई और दोहा छन्दों का प्रयोग है। कबीर की रमैनियाँ आकार में छोटी, बड़ी हैं। 'साखी' शब्द संस्कृत के 'साक्षी' शब्द का तद्भव है, जिसका अर्थ गवाह या प्रत्यक्षद्रष्टा है। साक्षी वह है जो अपनी आँखों से तथ्य को देखता है। 'साखी' में 'दोहा' छन्द प्रयुक्त है। कबीर ने इन साखियों में स्वानुभूत आध्यात्मिक तथ्यों, ज्ञान-भक्ति तथा समाजोपयोगी विचारों का विवेचन किया है। 'सबद' की रचना कबीर ने पदों में की है। ये पद विभिन्न राग-रागिनियों में निर्मित हैं, इनमें कबीर के आध्यात्मिक और लोकोन्मुखी संदेशों की अभिव्यक्ति है।

कबीर का काव्य मानवता का काव्य है। कबीर ने हिन्दुओं में प्रचलित संकीर्ण वर्ण-व्यवस्था, अस्पृश्यता, जाति-पाँति, कर्मकाण्ड तथा ब्राह्मणों के मिथ्याभिमान की कटु आलोचना की; उन्होंने मुसलमानों की कट्टरता पर भी प्रहार करते हुए काजियों और मुल्लाओं के आडम्बरों को व्यर्थ बताया। कबीर ने साम्प्रदायिक भावना का विरोध करते हुए राम और रहीम की एकता प्रतिपादित की है; फिर भी वे तन्मयता के क्षणों में राम नाम के जप को विशिष्ट बताते हैं। उन्होंने मानव समाज के कल्याण के लिए सहिष्णुता, प्रेम, दया, ममता, अपरिग्रह और परोपकार की भावना पर विशेष बल दिया।

कबीर का ब्रह्म निर्गुण, निराकार और सर्वव्यापी है। ईश्वर-प्राप्ति के लिए उन्होंने तीर्थयात्रा, हज, कर्मकाण्ड, व्रत आदि का सम्पूर्णतः निषेध किया और हृदय की आन्तरिक शुद्धता पर बल दिया। भक्तिकालीन अन्य कवियों की भाँति कबीर ने भी मानव जीवन के कटु सत्य-जीवन की क्षणभंगुरता-की स्पष्ट अभिव्यक्ति की है। कबीर की भक्ति निष्काम भाव की है। उनकी भक्ति में दास्यभाव, कान्ताभाव, तथा वात्सल्यभाव सभी दिखायी देते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर की भावाभिव्यक्ति की प्रशंसा करते हुए लिखा है— “यद्यपि वे पढ़े लिखे न थे पर उनकी प्रतिभा बड़ी प्रखर थी जिससे उनके मुँह से बड़ी चुटीली और व्यंग्य-चमत्कारपूर्ण बातें निकलती थीं। इनकी उक्तियों में विरोध और असम्भव का चमत्कार लोगों को बहुत आकर्षित करता था।”

कबीर के काव्य में प्रतीकों तथा अलंकारों का प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविकता और मार्मिकता के साथ हुआ है। इनके काव्य में उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, रूपक, रूपकातिशयोक्ति, विरोधाभास, अन्योक्ति आदि अलंकार स्वतः समाविष्ट हो गये हैं। कबीर की भाषा में पंजाबी, राजस्थानी, अवधी, ब्रज आदि के पर्याप्त शब्द मिलते हैं। उनकी भाषा में विलक्षण चमत्कार और प्रभावात्मकता है। कहीं-कहीं उलटबाँसियों के प्रयोग से उनका काव्य जनसामान्य के लिए दुर्बोध हो गया है, और प्रतीक भी सहजता से स्पष्ट नहीं हो पाते हैं।

कबीर का काव्य युगानुरूप धार्मिक और सामाजिक संदेश प्रदान करने तथा भक्ति की अजस्र सरिता प्रवाहित करने के कारण कालजयी है। सशक्त रचनाकार के रूप में, मानवीय मूल्यों के संपोषक के रूप में, भावुक भक्त के रूप में, दार्शनिक चिन्तक के रूप में गहन अनुभूतियों के सहज सम्प्रेषक के रूप में वे सदैव प्रासंगिक रहेंगे। अस्तु, कबीर सहज संत, उत्कृष्ट चिन्तक, सच्चे समाज-सुधारक और सहृदय कवि हैं।



मलिक मुहम्मद जायसी

हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत सूफी कवियों की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। इन कवियों ने अपनी धर्म-भावना के आधार पर ही प्रेम-काव्य की रचना की है। भारतीय जनजीवन तथा हिन्दी काव्य को हिन्दी की सूफी काव्यधारा ने विभिन्न रूपों में प्रभावित एवं समृद्ध किया है। मलिक मुहम्मद जायसी भक्तिकाल की इस सूफी प्रेममार्गी काव्यधारा के शिरोमणि कवि हैं, जिन्होंने मध्ययुग में हिन्दू तथा मुस्लिम संस्कृतियों के संकट के समय में अन्य सूफी संतों के साथ, परोक्ष सत्ता की एकता के साथ ही व्यावहारिक जीवन की एकता पर बल देकर दोनों में समन्वय का प्रयास किया। धर्म तथा मज़हब से बहुत ऊपर उठकर जायसी ने मनुष्यत्व का परिचय दिया और अपनी कथाओं के माध्यम से प्रेम के पवित्र मार्ग को दर्शाते हुए सामान्य जनजीवन से सम्बन्ध रखने वाली ऐसी विशिष्ट दशाओं को प्रस्तुत किया, जिन्होंने मनुष्य मात्र के हृदय को प्रभावित किया।

प्रेम की पीर के अमर गायक मलिक मुहम्मद जायसी का काव्य जन-काव्य है और सर्वसाधारण तक अपने भावों तथा विचारों को प्रेषित करने के लिए कवि को जनभाषा ही अभीष्ट रही है। उनका काव्य प्रेम-पद्धति निरूपण, सौन्दर्य-वर्णन, अध्यात्म, दर्शन, लोक-संस्कृति-रचना-शिल्प, छन्द-विधान तथा कथावस्तु का संघटन आदि सभी दृष्टियों से तो उच्चकोटि का है ही, भाषा के मर्मस्पर्शी माधुर्य तथा 'ठेठपन' की दृष्टि से भी अनूठा है। जायसी का जन्म 900 हिजरी अर्थात् सन् 1495 ई० के आस-पास हुआ था। उनके जन्मस्थान के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का मानना है कि जायस शहर के 'कंचाना मुहल्ला' में कवि का जन्म हुआ था। कुछ जनश्रुतियों के अनुसार वे गाजीपुर में पैदा हुए थे। इसके अतिरिक्त कवि के अन्य निवास स्थानों के सम्बन्ध में अमेठी, सासाराम

तथा मानिकपुर आदि का भी उल्लेख किया जाता है। जायसी के जन्म तथा निवास स्थान की चर्चा करते हुए यह उल्लेखनीय है कि कवि ने 'आखिरी कलाम' तथा 'पदमावत' के साथ ही साथ 'चित्ररेखा' और 'कन्हावत' में भी अपने नगर को जायस नाम दिया है तथा यत्र-तत्र उसके वैभव का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है।

मलिक मुहम्मद जायसी के नाम के सम्बन्ध में लगभग सभी विद्वान् एकमत हैं। उनकी मान्यता है कि कवि का नाम मुहम्मद था और उनके नाम के पूर्व लगी 'मलिक' उपाधि उनके पूर्वजों से सम्बद्ध है, जो सम्भवतः अरब से आए थे। इस प्रकार मलिक कवि के वंश की उपाधि परंपरा है। इसके साथ ही साथ यह भी संभावना व्यक्त की जाती है कि 'जायस' नामक स्थान से घनिष्ठतम सम्बन्ध होने के कारण ये जायसी कहलाए। जायसी के पिता का नाम शेख ममरेज था तथा इनकी माँ मानिकपुर के शेख अलहदाद की पुत्री थीं। जनश्रुति है कि जायसी पर बाल्यकाल में शीतला का भयंकर प्रकोप हुआ जिससे ये कुरूप हो गए तथा इनका बायाँ नेत्र और कान जाता रहा। बाल्यावस्था में ही इनके माता-पिता की मृत्यु हो गई और कुछ दिनों तक नाना के पास रहने के बाद ये फकीरों के साथ इधर-उधर भटकते फिरे। एक तो ये अनाथ थे, दूसरे साधुओं के संग और इनकी तीव्र बुद्धि तथा ईश्वर के प्रति प्रेमवृत्ति ने इन्हें अन्तर्मुखी तथा चिन्तनशील बना दिया। संयोगवश इन्हें सुयोग्य गुरु भी मिल गए। जायसी ने प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख मोहदी से शिक्षा ग्रहण की। इन्हें अशरफी परम्परा के शाह मुबारक बोदले से भी ज्ञान के नेत्र में महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हुई होंगी, अतएव स्वभाव से विनम्र कवि ने उनकी परम्परा का भी श्रद्धापूर्वक उल्लेख किया है। जायसी की मृत्यु कब हुई, यह विवादास्पद है। इस सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि जायसी भमेठी राजा के आमंत्रण पर वहाँ ६४८ हिजरी में गए थे और उसके थोड़े समय पश्चात् ही वहीं किसी दुर्घटना में जायसी की मृत्यु हो गई थी। इस प्रकार यह स्वीकार किया जा सकता है कि कवि की मृत्यु ६४६ हिजरी के आस-पास हुई होगी।

जायसी से सम्बद्ध हुई खोजों के आधार पर कवि की कुल चौबीस रचनाओं की सूचना उपलब्ध होती है। जिनकी सूची इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है—

- | | | |
|--------------------|-----------------|------------------|
| (1) पदमावत | (2) अखरावट | (3) सखरावत |
| (4) चंपावत | (5) इतरावत | (6) मटकावत |
| (6) खुर्वानामा | (8) मोराईनामा | (9) मुकहरानामा |
| (10) मुखरानामा | (11) पोस्तीनामा | (12) होलीनामा |
| (13) आखिरी कलाम | (14) घनावत | (15) सोरठ |
| (16) जपजी | (17) लहतावत | (18) मैनावत |
| (19) कहरानामा | (20) सकरानामा | (21) मेखरावटनामा |
| (22) स्फुट कविताएँ | (23) चित्रावत | (24) मसलानामा। |

उपर्युक्त रचनाओं में से अधिकांश रचनाएँ संदिग्ध एवं अप्राप्त हैं। अब तक जायसी की कुल सात रचनाएँ सम्पादित होकर प्रकाश में आ सकी हैं जिनके नाम क्रमशः पदमावत, अखरावट, आखिरी कलाम, कहरानामा, चित्रलेखा, मसलानामा तथा कन्हावत हैं।

‘पदमावत’ जायसी की सर्वाधिक चर्चित, सर्वश्रेष्ठ एवं प्रौढ़ कृति है। उसमें सूफी चिन्तनधारा के अनुरूप रत्नसेन और पदमावती प्रेमाख्यान के रूप में ईश्वरोन्मुख प्रेम का वर्णन किया गया है। ‘प्रेम’ का मुख्य रूप से ‘पदमावत’ की कथा का केन्द्र-बिन्दु है और सूफी सिद्धांत एवं दर्शन के अनुसार उसमें जिस प्रेमतत्त्व की अभिव्यंजना हुई है वह नायक तथा नायिका के मध्य पल्लवित होने वाला लौकिक प्रेम नहीं अपितु आध्यात्मिक प्रेम है। इसके साथ ही साथ इस महाकाव्य में कल्पना और इतिहास का सुन्दर समन्वय है। इस कथा का पूर्वार्द्ध कल्पना और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक यथार्थ पर आधारित माना जाता है।

‘अखरावट’ कवि की सिद्धांतपरक प्रौढ़कृति है जिसमें कवि आत्मा, परमात्मा और सृष्टि-तत्त्व का वर्णन सूफी दर्शन के परिप्रेक्ष्य में किया है। कवि ने रूपकों के माध्यम से आध्यात्मिक साधना का जो प्रस्तुत किया है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है। अन्य सभी बातों की अपेक्षा ‘प्रेम की पीर’ को इसमें अधिक महत्त्व दिया गया है। इसकी भाषा अवलोकन है तथा ‘पदमावत’ की अपेक्षा अधिक सरल एवं सुबोध है।

‘आखिरी कलाम’ मूलतः जायसी की एक कथा प्रधान कृति है जिसमें इस्लामी विश्वास के अनुसार प्रलय, सृष्टि और कयामत (आखिरी दिन) का वर्णन है। इसकी भाषा साधारण है और सर्वत्र वर्णनात्मकता का ही प्राधान्य है। काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से यह कृति विशेष महत्त्व की नहीं है। ‘कहरानामा’ की रचना एक लोक धुन के आधार पर की गई है। कहरवा गीत में निर्गुण ब्रह्म का गुणगान करना, आत्मा और परमात्मा के प्रेमपरक गीत गाना, इस देश की प्राचीन लोकपरम्परा रही है। जायसी ने इस परम्परा को ग्रहण करके इसे काव्यरूप में निबद्ध किया है। ‘चित्ररेखा’ जायसी की एक अन्य कृति है जो चन्द्रपुर की राजकुमारी और प्रीतम कुँवर की कथा पर आधारित एक छोटी सी प्रेमकथा है, जिसमें कवि ने अत्यंत संक्षिप्त रूप में प्रेम-पंथ का बड़ा ही सुन्दर, चित्ताकर्षक एवं मर्मस्पर्शी निरूपण किया है। मसनवी शैली में रचित इस छोटे से प्रेमाख्यान की भाषा अवधी है जिसमें कवि की प्रौढ़ रचना-पद्धति तथा परिपक्व कल्पना के दर्शन होते हैं। ‘मसलानामा’ में जायसी ने अवधी भाषा तथा अवध जनपद में प्रयुक्त ‘मसलों’ को अत्यन्त जीवन्त रूप में प्रस्तुत किया है। कहावतों के आधार पर उपदेशमूलक दृष्टान्तों के उपस्थापन से सम्बद्ध यह काव्य हिन्दी में अपने ढंग का है। जायसी कृत ‘कन्हावत’ हिन्दी कृष्णकाव्य परंपरा का एक ऐसा प्रबन्धकाव्य है जिसमें कवि ने सूरदास से भी पहले कृष्ण-जीवन को उरेहा है। कवि ने मूल रूप में श्रीमद्भागवत तथा पुराणों में वर्णित कथा को ग्रहण किया है तथा इसके साथ ही साथ अत्यंत स्वच्छन्दतापूर्वक नवीन उद्भावनाओं एवं कल्पना के माध्यम से एक प्रभावशाली प्रेमाख्यान प्रस्तुत किया है। इस कृति की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है।

वस्तुतः जायसी की रचनाओं में ही नहीं, अब तक उपलब्ध समस्त सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में ‘पदमावत’ सर्वश्रेष्ठ है। इस कृति से जायसी की काव्य-प्रतिभा, आध्यात्मिकता तथा बहुज्ञता का परिचय मिलता है। ‘पदमावत’ के कथानक को स्थूल रूप से दो अंशों में विभक्त किया जा सकता है। इसके पूर्वार्द्ध में पदमावती, रत्नसेन तथा अलाउद्दीन के नामों का उल्लेख हुआ है किन्तु उनसे जुड़ा हुआ कथा अंश कल्पित है।

कथानक के उत्तरार्द्ध में जिन घटनाओं का समावेश है, वे अवश्य ही इतिहास के संस्पर्श में आकर ऐतिहासिक रूप धारण कर लेती हैं। इस महाकाव्य में कवि ने पद्मिनी अथवा पद्मावती सम्बन्धी ऐतिहासिक घटनाओं और लोक-प्रचलित कथाओं एवं परम्पराओं को बड़े सुन्दर ढंग से निबद्ध किया है।

‘पद्मावत’ में शृंगार के दोनों पक्षों—संयोग एवं वियोग की मार्मिक झाँकी देखने को मिलती है किन्तु प्रधानता विप्रलम्भ शृंगार सम्बन्धी वर्णन की ही है। सूफीमत में विरह-भावना को साधना-क्षेत्र में सर्वाधिक प्रतिष्ठा दी गई है। सूफीमत सम्बन्धी इस सत्य की स्वीकृति सूफी कवियों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। अतएव ऐसी स्थिति में ‘पद्मावत’ में विरह-वर्णन का प्राधान्य होना स्वाभाविक ही है। इस कृति में प्राप्त षट्त्रयु वर्णन में कवि ने संयोग और शृंगार की उद्दीपक अनेक परिस्थितियों का मार्मिक चित्रण किया है। विप्रलम्भ शृंगार की दृष्टि से नागमती का विरह-वर्णन अत्यंत मार्मिक है। जायसी ने इस हेतु बारहमासा का सहारा लिया है। उन्होंने अपने बारहमासा में नवीन उपमाओं की योजना, अभिनव प्रसंगों की उद्भावना, नए-नए चित्रों की अवतारणा तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तर्वृत्तियों के विश्लेषण में अपना अपूर्व कौशल प्रदर्शित किया है। इसके अतिरिक्त इस वर्णन के अंतर्गत कवि जायसी ने लौकिक वर्णन के साथ-साथ विरह को विराट रूप देखकर आध्यात्मिकता को आरोपित किया है। आध्यात्मिकता के इस आरोपण के कारण ही उनके बारहमासा वर्णन में शाश्वतता आ गई है जो साधारण प्रेमपरक साहित्य में नहीं पाई जाती।

‘पद्मावत’ के कथानक का एक पक्ष आध्यात्मिक होने के कारण उसमें रहस्यात्मकता का समावेश हो गया है। जायसी एक श्रेष्ठ रहस्यवादी कवि हैं तथा उनकी रहस्यानुभूति और रहस्याभिव्यक्ति की सीमाएँ एवं परिधि अत्यंत व्यापक और विस्तृत हैं। ‘पद्मावत’ का रहस्यवाद मूलतः अद्वैत भावना पर आश्रित रहस्यवाद है जिसमें कवि ने लौकिक पति-पत्नी के प्रथम समागम की रसानुभूति को आत्मा-परमात्मा के मिलन की दिव्य अनुभूति तक पहुँचा दिया है। पद्मावती लौकिक स्तर पर तो रत्नसेन

की प्रेमिका और पत्नी है किन्तु अलौकिक रूप में वह ब्रह्म का प्रतीक है। जायसी की रहस्य-भावना के दो स्पष्ट रूप हैं—साधनात्मक तथा भावात्मक। साधनात्मक रहस्यवाद का आधार है योग और भावात्मक रहस्यवाद का आधार है वियोग। इन दोनों में से कवि जायसी ने भावात्मक रहस्यवाद को प्रधानता दी है। वियोग ही सच्चे प्रेम की कसौटी है। वियोग में पड़कर साधक को जिन कष्टों का सामना करना पड़ता है उन्हें जायसी ने नागमती और रत्नसेन के वियोग वर्णनों में स्पष्ट कर दिया है। नागमती का वियोग-वर्णन हिन्दी काव्य की स्थायी सम्पत्ति है।

‘पदमावत’ जायसी की काव्यानुभूति का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस महाकाव्य में जीवन के विविध रूपों का अत्यंत प्रभावशाली अंकन हुआ है। शृंगार के अतिरिक्त इस काव्य में प्रसंगानुसार शान्त, वीभत्स, वीर, रौद्र, करुण आदि रसों की भी सुन्दर व्यंजना हुई है। कवि ने अपने भावों को अधिकाधिक रोचक, मनोरंजक एवं चित्ताकर्षक बनाने के उद्देश्य से विविध प्रकार के अलंकारों का प्रयोग किया है। जायसी ने शब्दालंकारों की अपेक्षा अर्थालंकारों का अधिक प्रयोग किया है। छन्द-विधान के स्तर पर कवि ने दोहा-चौपाई शैली को प्रमुखता प्रदान की है। जायसी की भाषा ठेठ अवधी है। ‘पदमावत’ में प्रयुक्त भाषा को अधिकाधिक भाव-गांभीर्य एवं अर्थ-गांभीर्य से युक्त करने के उद्देश्य से कवि ने अनेक प्रकार की सूक्तियों, लोकोक्तियों एवं मुहावरों का भी प्रयोग किया है। जायसी ने ‘पदमावत’ में लोकभाषा का जैसा सफल एवं सार्थक प्रयोग किया है वैसा अन्यत्र कहीं भी दृष्टिगत नहीं होता। प्रेम की पीर के अमर गायक जायसी की भाषा सहजता, समर्थता, मधुरता, एकरूपता, चित्रात्मकता आदि गुणों से युक्त है।

संक्षिप्ततः, प्रेम की पावन धारा, अवधी के जीवन्त प्रयोग, दोहा-चौपाई शैली, कथानक रुढ़ियों के सुन्दर प्रयोग आदि सभी दृष्टियों से जायसी प्रेमाख्यान परम्परा के सर्वश्रेष्ठ कवि कहे जा सकते हैं।

सूरदास

महाकवि सूरदास भक्तिकालीन सगुणभक्तिककाव्यधारा की कृष्णभक्तिशाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। अष्टछाप के कवियों में इन्हें सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। भगवान् कृष्ण की भक्ति में निरन्तर लीन रहने वाले इस महाकवि का जन्म दिल्ली के समीप 'सीही' नामक ग्राम में संवत् १५३५ विक्रमी में माना जाता है। कुछ विद्वान् इनका जन्म आगरा और मथुरा के मध्य स्थित 'रुनकता' ग्राम मानते हैं। सूरदास इन्हीं दो नगरों के बीच स्थित यमुना के किनारे 'गऊघाट' पर रहा करते थे। 'गऊघाट' पर ही वल्लभाचार्य से उनकी भेंट हुई और आचार्य ने उन्हें अपना शिष्य बनाकर 'भागवत' की लीला का पदों में गायन करने का आदेश दिया। गोस्वामी विट्ठलनाथ ने इन्हें 'पुष्टिमार्ग' का जहाज कहा है। सूरदास का गोलोकवास संवत् १६४० विक्रमी में माना जाता है।

अधिकांश विद्वानों ने 'सूरसागर', 'सूरसारावली' और 'साहित्य लहरी' को सूर की रचनाओं के रूप में स्वीकार किया है। 'सूरसागर' सूरदास की सर्वाधिक ख्यातिलब्ध रचना है। 'सूरसागर' की रचना का मूलाधार 'श्रीमद्भागवत' है। 'सूरसागर' की कथावस्तु द्वादश स्कन्धों में विभक्त है। गुणवत्ता और मात्रा की दृष्टि से इसका दशम स्कन्ध विशिष्ट लोकप्रिय है। दशम स्कन्ध में कृष्णचरित्र का विस्तार से वर्णन है। सूरदास ने 'सूरसागर' में कथा का आधार तो श्रीमद्भागवत से ग्रहण किया परन्तु अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा से अनेक नवीन प्रसंगों की उद्भावना करते हुए गम्भीरता और मार्मिकता के साथ मनोरम पदों की सर्जना की जो उनकी प्रसिद्धि के प्रमुख आधार हैं। सूर सारावली में सृष्टि-रचना,

रासलीला, होली वर्णन के प्रसंग विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। 'साहित्यलहरी' सूरदास के दृष्टिकूट पदों का संग्रह है। काव्यशास्त्र के विवेचन की दृष्टि से भी यह रचना उपयोगी है।

सूर के काव्य का प्रमुख आधार उनकी कृष्ण-भक्ति है। उन्होंने निर्गुणोपासना के स्थान पर सगुणोपासना को विशिष्ट महत्त्व प्रदान किया। 'सूरसागर' में विनय, वात्सल्य और शृंगार के उत्कृष्ट और मनोरम पदों का भण्डार है। विनय और दैन्य के पदों में संसार की असारता का वर्णन करते हुए सूर ने कृष्ण के प्रति अपनी अटूट भक्ति प्रदर्शित की है। 'सूरसागर' कृष्णभक्ति का अक्षय कोष है। उनकी दृष्टि में भगवान् कृष्ण की असीम कृपा भक्त का सर्वतोमुखी कल्याण करने में समर्थ है। 'सूरसागर' में सूर की पुष्टिमार्गीय भक्ति सख्य, वात्सल्य और माधुर्य तीनों रूपों में प्रतिफलित हुई है।

— [सूर का बाल-वर्णन सहज, स्वाभाविक और आकर्षक है उन्होंने कृष्ण की विविध बाललीलाओं, मनोभावों, चेष्टाओं और क्रियाकलापों के मार्मिक और लालित्यपूर्ण दृश्य अंकित किये हैं। बालहृदय और मातृहृदय का ऐसा अनोखा वर्णन पाठकों को रससिक्त करने में पूर्ण समर्थ है। वात्सल्य के संयोग और वियोग पक्षों का सफल उद्घाटन सूर की महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

सूर सौन्दर्य और प्रेम के अप्रतिम कवि हैं। सूर के प्रेम-वर्णन में रूपाकर्षण और साहचर्य का विलक्षण योग है। 'सूरसागर' में संयोग शृंगार का स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी रूप मिलता है। रूपवर्णन, दानलीला, माखनलीला, रासलीला आदि पर सूर की वृत्ति खूब रमी है। सूरसागर का सबसे हृदयस्पर्शी और कलात्मक अंश 'भ्रमरगीत' है, जिसमें सूर की काव्यकला चरमोत्कर्ष पर पहुँची है। भ्रमरगीत में वियोग शृंगार की अजस्र धारा प्रवाहित हुई है। वियोग-जनित सभी दशाओं का समुचित

समावेश 'भ्रमरगीत' में है। 'भ्रमरगीत' में सूर ने उद्धव-गोपी संवाद के माध्यम से ज्ञान पर भक्ति और योग पर प्रेम की विजय प्रदर्शित करते हुए सगुणोपासना को महत्ता दी है। सूर का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य में अप्रतिम है। सूर के विरह वर्णन में सरसता, स्वाभाविकता, मर्मस्पर्शिता और वाग्विदग्धता का मणिकांचन योग है। सूर की गोपियों के वर्णन में नारियों के प्रति संवेदना और उनकी स्वायत्तता का स्वर भी लक्षित किया जा सकता है।

'सूरसागर' में ब्रजभाषा का परिनिष्ठित और साहित्यिक रूप मिलता है। सूर की भाषा में आलंकारिकता, स्वाभाविकता, सजीवता, संगीतात्मकता और चित्रात्मकता का उदात्त सन्निवेश है। उनकी भाषा में लोकोक्तियों और मुहावरे भी स्वाभाविक रूप से उपलब्ध हैं। सूर के काव्य में अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, दृष्टान्त, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का स्वाभाविक और मनोरम प्रयोग है। सूर का काव्य विविध प्रकार की संगीतशास्त्रीय राग-रागिनियों में आबद्ध है।

निष्कर्षतः, सूर का काव्य भावप्रवणता, मार्मिकता, रमणीयता, स्वाभाविकता, वाग्विदग्धता, उदात्त कल्पना-कौशल, संगीतात्मकता, परिनिष्ठित भाषा, उत्कृष्ट अप्रस्तुत विधान और प्रभावात्मकता की दृष्टि से अप्रतिम है। पाठक या श्रोता को रससिक्त करने का अद्भुत वैशिष्ट्य सूर के काव्य में है। सूर के काव्यत्व के सन्दर्भ में नाभादास की पंक्ति 'सूर-कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै। सर्वथा समीचीन है।

तुलसीदास

महाकवि तुलसीदास भक्तिकाल की सगुणभक्तिकाव्यधारा की रामभक्तिशाखा के सर्वोच्च कवि हैं। भारतीय संस्कृति को उत्कृष्टता और समग्रता के साथ उन्होंने अपने ग्रन्थों में अभिव्यक्त किया है। गोरवामी तुलसीदास का जन्म कुछ विद्वान् संवत् १५५४ विक्रमी मानते हैं तथा कुछ संवत् १५८६ विक्रमी को। प्रसिद्ध रामायणी रामगुलाम द्विवेदी द्वारा स्वीकृत संवत् १५८६ विक्रमी को अधिकांश विद्वानों ने उपयुक्त माना है। तुलसीदास की जन्मभूमि के सम्बन्ध में तीन मत प्रचलित हैं— बाँदा जिले का राजापुर गाँव, एटा जिले का सोरों तथा गोण्डा जिले में सूकरखेत (वाराहक्षेत्र) के निकट स्थित राजापुर गाँव। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर तुलसीदास बचपन में ही माता-पिता से वियुक्त हो गये तथा उनका बचपन अत्यन्त निर्धनता में बीता। बचपन में ही इन्हें पथ-प्रदर्शक गुरु मिल गये जिनसे इन्होंने 'सूकरखेत' में रामकथा सुनी। तुलसीदास ने संवत् १६३१ विक्रमी में विश्वप्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' की रचना की। तुलसीदास का सम्पूर्ण जीवन सत्संग और रामकथा के संकीर्तन में बीता। वृद्धावस्था में इन्हें हाडुपीड़ा हुई, जिससे निवृत्ति के लिए इन्होंने 'हनुमानबाहुक' की रचना की। संवत् १६८० विक्रमी में काशी के 'असीघाट' पर इनका देहावसान हुआ।

तुलसी का कृतित्व वैविध्यपूर्ण है। इनके प्रामाणिक ग्रन्थों की संख्या बारह स्वीकार की गयी है— रामचरितमानस, रामलला नहछू,

वैराग्य संदीपनी, बरवै रामायण, पार्वतीमंगल, जानकीमंगल, रामज्ञाप्रश्न, दोहावली, कवितावली, गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली और विनयपत्रिका

गोस्वामी तुलसीदास का 'रामचरितमानस' भारतीय संस्कृति का सारभूत ग्रन्थ है। इसमें रामकथा सप्त सोपानों (काण्डों) में विभक्त है। अवधी भाषा में निबद्ध इस ग्रन्थ में गोस्वामी जी ने पुराण, नाटक, महाकाव्य तीनों की शैली एवं विशेषताओं का अद्भुत समन्वय किया है। चारित्रिक औदात्य, सांस्कृतिक वैभव, उदात्त कथानक, उदात्त भाव, उदात्त शैली, उदात्त संवाद एवं गरिमामय रचनाविधान आदि की दृष्टि से रामचरितमानस उत्कृष्ट महाकाव्य है। ब्रह्मानन्ददायक भक्ति और ब्रह्मानन्द सहोदर रस का सफल निष्पादन इस महाकाव्य में है। इसका रामकथा आस्था, विश्वास और विमल विवेक पर आधारित है। इस ग्रन्थ को विद्वानों और जनसामान्य के बीच समान रूप से आदर प्राप्त है। इस ग्रन्थ की लोकप्रियता के कारण ही नाभादास ने तुलसी को 'वाल्मीकि का अवतार माना है— 'कलि कुटिल जीव निस्तार हित बाल्मीकि तुलसी भयो।'।

विद्यापति और सूरदास की गीति पद्धति पर इनकी गीतावली, श्रीकृष्ण गीतावली, विनयपत्रिका—तीन कृतियाँ मिलती हैं। संस्कृत की कोमलकान्त पदावली और ब्रजभाषा के माधुर्य का सम्मिश्रण इन कृतियों में है। 'गीतावली' में कोमल और मार्मिक भावों की गेय शैली में रमणीय अभिव्यक्ति है। 'श्रीकृष्णगीतावली' में ६१ पदों में कृष्णलीला का गान भावपूर्ण शैली में किया गया है। 'विनयपत्रिका' में भक्तिभाव का गम्भीरता और स्वाभाविकता के साथ हृदयावर्जक वर्णन है। अवधी भाषा का ठेठ माधुर्य जानकीमंगल, पार्वतीमंगल, रामलला नहछू और बरवैरामायण में उपलब्ध है। दोहावली में समाज, धर्म, नीति, राजनीति, रामभक्ति, नाममहिमा

आदि विविध विषयों से सम्बन्धित दोहे हैं। वैराग्य संदीपनी में संत स्वभाव, संत महिमा और शान्ति का वर्णन मिलता है। रामाज्ञा प्रश्न में शकुन विचारने के व्याज से रामकथा वर्णित है।

तुलसीदास ने रामचरित को अपने समय में प्रचलित सभी काव्य-भाषाओं एवं शैलियों के माध्यम से मुक्तक, प्रबन्ध, खण्ड, गीति, महाकाव्य, लोकगीत आदि काव्य रूपों में प्रस्तुत किया है। उन्होंने समाज, सम्प्रदाय, धर्म, दर्शन आदि क्षेत्रों में सामञ्जस्य स्थापित किया है। उनका काव्य प्रेम, त्याग और विश्वमंगल की कामना का प्रतिबिम्ब है।

तुलसीदास का मानव प्रकृति के विभिन्न रूपों के साथ रागात्मक सामञ्जस्य था। भगवान राम के शक्ति, शील और सौन्दर्य से समन्वित चरित्र के माध्यम से उन्होंने समाज में व्याप्त विषमता, विद्वेष, कटुता, अहंकार आदि पर प्रहार करते हुए प्रेम, सौहार्द, ममत्व, करुणा, सत्य, अहिंसा, धैर्य, परोपकार, त्याग, क्षमा, उदारता आदि गुणों को अपनाने पर बल दिया है। तुलसी के काव्य में लोक-कल्याण की भावना प्रकृष्ट रूप में परिलक्षित है।

तुलसीदास रससिद्ध कवि थे। उनके काव्य में विविध रसों की रमणीय अभिव्यक्ति है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार "प्रेम और शृंगार का ऐसा वर्णन जो बिना किसी लज्जा और संकोच के सबके सामने पड़ा जा सके, गोस्वामी जी का ही है।" रोचकता, मार्मिकता सुबोधता, भावशबलता, प्रभविष्णुता और उदात्त मानवीय मूल्यों की स्थापना की दृष्टि से तुलसी का काव्य अप्रतिम है। वस्तुवर्णन एवं भाववर्णन दोनों में कवि का कल्पना-विलास रमणीय और चित्तानुरंजक है।

तुलसी के काव्य को रससिक्ता, चित्ताकर्षक और सम्प्रेषणी बनाने में अलंकार की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक और दृष्टान्त उनके प्रिय अलंकार हैं। ब्रज, अवधी और संस्कृत भाषा पर उनका समान अधिकार था। छन्द-वैविध्य उनके काव्य का प्रभावशाली विशेषता है। भारतीय संस्कृति, समाज, दर्शन और साहित्य का उत्कृष्ट रूप उनके काव्य में समाविष्ट है।

समग्रतः, प्रेरणाप्रद चरित्रों के प्रतिपादन, भावबोध के सशक्त संयोजन, गम्भीर जीवनदृष्टि, रमणीय कल्पना-कौशल, मानव-प्रकृति के विविध रूपों के रेखांकन, मानवीय मूल्यों के प्रबोधपरक चित्रण तथा शिल्पगत वैशिष्ट्य के कारण तुलसी का साहित्य विश्वसाहित्य स्मरणीय है।



बिहारी

बिहारी रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि के रूप में विख्यात हैं। कविवर बिहारी का जन्म संवत् १६५२ वि० के लगभग ग्वालियर के समीप बसुआ गोविन्दपुर नामक गाँव में माना जाता है। बिहारी माथुर चौबे ब्राह्मण के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनके पिता का नाम केशवराय था। बिहारी ने संस्कृत, प्राकृत ग्रन्थों का गम्भीरता से अध्ययन किया था। जब बिहारी जयपुर के राजा जयसिंह के दरबार में गये उस समय राजा को नवपरिणीता रानी के प्रेमपाश में अति आबद्ध जानकर उन्होंने निम्नलिखित दोहा उनके पास भिजवाया था—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं बिकास, इहिं काल।

अली कली ही सौं बैँध्यौ, आगे कौन हवाल।।

बिहारी के इस दोहे का महाराजा जयसिंह पर विशेष प्रभाव पड़ा। उन्होंने बिहारी को 'काली पहाड़ी' नामक गाँव देते हुए प्रत्येक दोहे पर एक अशर्फी पुरस्कार देने की व्यवस्था की। बिहारी ने जयसिंह के संरक्षण में प्रसिद्ध कृति 'सतसई' की रचना की। उनका जयपुर के राजघराने से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। बिहारी का देहावसान संवत् १७२० वि० में माना जाता है।

बिहारी की ख्याति का आधार उनकी एक मात्र उपलब्ध रचना 'बिहारी सतसई' है। जगन्नाथदास रत्नाकर ने 'बिहारी-रत्नाकर' में इनके दोहों की प्रामाणिक संख्या ७१३ स्वीकार की है। बिहारी सतसई में रीतिकालीन प्रवृत्तियाँ उत्कृष्ट रूप में अभिव्यंजित हैं। इस ग्रन्थ पर ऋालकृत 'गाथा सप्तशती', गोवर्धनाचार्य कृत, 'आर्यासप्तशती' और अमरुककृत 'अमरुक शतक' का प्रभाव परिलक्षित है। जितनी टीकाएँ बिहारी सतसई पर लिखी गयीं उतनी रीतिकाल के किसी अन्य ग्रन्थ पर

नहीं। इन्में कृष्ण कवि की टीका, लल्लू जी लाल की लालचन्द्रिका टीका, सरदार कवि की टीका, सूरति मिश्र की टीका और जगन्नाथदास 'रत्नाकर' की 'बिहारी-रत्नाकर' टीका का विशेष महत्त्व है। आचार्य शुक्ल बिहारी को रीतिकाल का प्रतिनिधि कवि मानते हुए लिखते हैं— "बिहारी ने यद्यपि लक्षणग्रन्थ के रूप में अपनी 'सतसई' नहीं लिखी है पर 'नख-शिख', 'नायिका भेद', 'षट्त्रय' के अन्तर्गत उनके सब शृंगार दोहे आ जाते हैं..... दोहों को बनाते समय बिहारी का ध्यान लक्षणों पर अवश्य था।"

बिहारी सतसई की रचना रस, भाव, नायिका-भेद, नायक-भेद अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, गुण आदि को ध्यान में रखकर की गयी है। भावों और अनुभावों के साथ वस्तुओं की रमणीक व्यंजना भी बिहारी के दोहों में है। रससिद्ध कवियों के काव्य में कालजयी सत्यों का उद्घाटन सहजता से होता है। बिहारी के काव्य में भी नीतिपरक, प्रबोधपरक, मानवप्रकृति तथा जीवन के विविध पक्षों को रेखांकित करने वाली आह्लादक सूक्तियाँ मिलती हैं जो काव्य-रसिकों का कंठहार हैं।

शृंगार के संयोग और वियोग का वैविध्यपूर्ण और सूक्ष्म चित्रण बिहारी के दोहों में मिलता है। नायक और नायिका के सौन्दर्यांकन में बिहारी ने बाह्य रूप-चित्रण के साथ आन्तरिक मनोभावों को भी बड़े कौशल के साथ अभिव्यक्त किया है। प्रेम और सौन्दर्य के चित्रण में बिहारी सिद्धहस्त हैं। उनका काव्य युवावस्था की सुकुमार वृत्तियों के चित्रण और नख-शिख रूपवर्णन के वैशिष्ट्य के कारण श्लाघनीय है।

बिहारी के काव्य में भावों, अनुभावों, और संचारी भावों की मर्मस्पर्शी व्यंजना है जिनमें उक्तिकौशल, कल्पना का चमत्कार और माधुर्य-मनोमुग्धकारी है। विप्रलंभ शृंगार में पूर्वराग, मान और प्रवास के मार्मिक और वैविध्यपूर्ण वर्णन हैं। विरह की सभी दशाएँ बिहारी के काव्य में वर्णित हैं। कहीं-कहीं उनका विरह-वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण और ऊहात्मक हो गया है।

बिहारी की बहुज्ञता उनके दोहों के विषय—वैविध्य से प्रमाणित है। उनके काव्य में शृंगार, भक्ति, नीति, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद से सम्बन्धित रसातल और चमत्कारपूर्ण दोहे उपलब्ध हैं। प्रकृति—चित्रण सम्बन्धी दोहे भी आकर्षक और नाद—सौन्दर्य से परिपूर्ण हैं।

‘रोहा’ जैसे छोटे छन्द में भाव की अजस्र धारा को प्रवाहित करने में बिहारी पूर्ण सफल हैं। इन दोहों में भावों की मार्मिकता, वचनवृत्ता, कल्पना का औदात्य और कलात्मक चारुता शिखर पर है। बिहारी के काव्य में अलंकार और भाव परस्पर पूरक हैं। उनकी माधुर्यमयी ब्रजभाषा की गुणवत्ता और अर्थवत्ता की वृद्धि में अलंकारों की सार्थक भूमिका है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, असंगति, विभावना, विरोधाभास आदि अलंकारों ने उनके वर्णन को सजीव और हृदयावर्जक बनाया है। मुक्तक काव्य का गुण बिहारी के काव्य में शिखर पर है। सामासिक शक्ति, अर्थगौरव, नादसौन्दर्य और आलंकारिक वैभव बिहारी की भाषा में पूर्ण रूप से परिलक्षित है। अभिधा, लक्षणा और व्यंजना शब्द शक्तियों के सार्थक प्रयोग से उनकी भाषा में असाधारण विलक्षणता आ गयी है।

बिहारी के काव्य में प्रेम और शृंगार के माधुर्यपूर्ण भावों और दृश्यों के कलात्मक चित्रण के साथ ही साथ अर्थगौरव की उज्ज्वल छटा विद्यमान है। अप्रस्तुत विधान के चित्ताकर्षक प्रयोग, भाषा की सामासिकता और जीवन के विविध क्षेत्रों के आकर्षक चित्रण की दृष्टि से भी उनका काव्य वैशिष्ट्यपूर्ण है।

बिहारी हिन्दी साहित्य के यशस्वी कवि हैं। उनका एकमात्र ग्रन्थ ‘सतसई’ हिन्दी साहित्य का अनमोल रत्न है।



भूषण

भूषण शैतिकाल के वीररस के विख्यात कवि हैं। स्वाभिमान के धनी कवि भूषण का जन्म कानपुर जिले के यमुना के किनारे स्थित त्रिविक्रमपुर (तिकवाँपुर) गाँव में हुआ था। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इनका जन्मकाल सं० १६७० वि० स्वीकार करते हैं। इनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था। चिन्तामणि, मतिराम और नीलकंठ (जटाशंकर) इनके भाई के रूप में स्वीकार किये गये हैं। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। भूषण के वास्तविक नाम का पता नहीं चल सका है। चित्रकूट के राजा ने इन्हें 'भूषण' की उपाधि प्रदान की थी और इस नाम से ही ये साहित्य-जगत् में प्रसिद्ध हो गये। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार चित्रकूट के राजा रुद्रशाह सोलंकी ने इन्हें 'भूषण' की उपाधि दी थी जबकि आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र 'भूषण' उपाधिदाता 'हृदयराम सोलंकी' को मानते हैं। भूषण शिवाजी और छत्रसाल के आश्रय में रहे। इनका देहावसान संवत् १७७२ वि० माना जाता है।

शिवसिंह सेंगर के 'शिवसिंह सरोज' में भूषण की चार कृतियों का उल्लेख मिलता है— शिवराज भूषण, भूषण हजारा, भूषण उल्लास, दूषण उल्लास। इनमें से केवल 'शिवराज भूषण' ही उपलब्ध है। शेष तीन ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। भूषण के 'शिवाबावनी' और 'छत्रसाल दशक' ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ फुटकर छन्द भी मिलते हैं। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'भूषण' (ग्रन्थावली) में 'शिवभूषण' (शिवराज भूषण) के अतिरिक्त प्रकीर्णक 'शीर्षक' के अन्तर्गत इनके ७६ छन्द संकलित किये हैं।

‘शिवराजभूषण’ भूषण की कीर्ति का अक्षय स्तम्भ है। भूषण के इस ग्रन्थ में १०५ अलंकारों का निरूपण है जिनमें ४ शब्दालंकार, ६६ अर्थालंकार तथा ‘चित्र’ और ‘संकर’ नामक दो अलंकार हैं। इस ग्रन्थ की रचना में जयदेव के ‘चन्द्रालोक’ तथा मतिराम के ‘ललित ललाम’ का प्रभाव परिलक्षित है। ‘शिवराज भूषण’ में उल्लिखित कुछ अलंकारों का विवेचन केवल जयदेव के ‘चन्द्रालोक’ में ही उपलब्ध है। भूषण ने ‘शिवराजभूषण’ में अलंकारों के लक्षणों का विवेचन ‘दोहा’ छन्द में किया है और उनके उदाहरण कवित्त, सवैया, छप्पय और दोहा छन्दों में प्रस्तुत किये हैं। इसमें अलंकारों के उदाहरणों में शिवाजी की प्रशस्ति-सम्बन्धी छन्द हैं। ‘शिवराजभूषण’ अलंकार विवेचन और शिवाजी की प्रशस्ति का समन्वित प्रयास है। शिवाजी की वीरता और महिमा की प्रशस्ति में कवि जितना सफल है उतना अलंकार-निरूपण में नहीं। इसीलिए कहीं-कहीं उसके उदाहरण लक्षणों के अनुरूप निर्मित नहीं है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि इसमें भूषण ने अलंकारों के उदाहरणों के रूप में शिवाजी के जीवन की घटनाओं और प्रशस्ति को आधार बनाकर वीर रस के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं; जबकि भूषण के समकालीन अन्य कवियों के काव्य में अलंकारों के उदाहरणों के रूप में प्रायः शृंगार विषयक उदाहरण प्रयुक्त हैं। भूषण के काव्य के नायक आतंक और अन्याय के दमन में तत्पर ऐतिहासिक वीर शिवाजी और छत्रसाल हैं, जिनकी शौर्यगाथा से जनता भलीभाँति परिचित रही है।

भूषण की ख्याति का प्रमुख आधार उनका वीररसात्मक ओजस्वी काव्य है। भूषण ने वीर रस के युद्ध, दान, दया और धर्म सभी भेदों का सजीव और आकर्षक वर्णन किया है। भूषण के काव्य में वीभत्स, रौद्र, भयानक, अद्भुत, करुण तथा शृंगार आदि के उदाहरण भी उपलब्ध हैं।

विषय के अनुकूल ओजपूर्ण वाणी का प्रयोग उनके काव्य की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। भूषण ने ब्रजभाषा को काव्य रचना का माध्यम बनाया है। उन्होंने सशक्त भाव-व्यंजना के लिए संस्कृत, अपभ्रंश, अरबी, फारसी और क्षेत्रीय बोलियों के शब्दों का भी उचित संनियोजन किया है।

भूषण हिन्दी साहित्य की राष्ट्रीय चेतना के कवि माने जाते हैं। उनकी वाणी में अन्याय और अत्याचार के प्रतिरोध के साथ स्वधर्म-संरक्षण की भावना है। उन्होंने औरंगजेब के अत्याचार और उसकी धार्मिक कट्टरतापूर्ण संकीर्ण नीति की कटु भर्त्सना की है। उन्होंने अलंकार-निरूपण सम्बन्धी ग्रन्थ लिखकर जहाँ रीतिकालीन सामान्य पद्धति का पालन किया है वहीं राष्ट्राभिमान से परिपूर्ण ओजस्वी कविताओं की सर्जना से राष्ट्र का गौरव भी परिवर्धित किया है। भूषण ने समसामयिक शृंगारमयी कविता की अपेक्षा ओजगुणमयी वीररसात्मक कविता का वरण कर काव्य को आकर्षक और गौरवपूर्ण बनाया है। भूषण की कविता के सौन्दर्याभिव्यंजन में आलंकारिक माधुर्य और शब्द-विन्यास की चारुता का उत्कृष्ट योगदान है। वस्तुतः, भूषण हिन्दी की ओजमयी कविता के गौरव हैं। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के अनुसार, "भूषण वीर रस के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, वीर काव्यकर्ताओं के 'भूषण हैं'।"



घनानन्द

घनानन्द रीतिकालीन रीतिमुक्तधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इनका जन्म संवत् १७४६ वि० में बुलन्दशहर जनपद में माना जाता है। घनानन्द के वास्तविक नाम के सन्दर्भ में विद्वानों में मतभेद है। शिवसिंह सेंगर और ग्रियर्सन ने इनका नाम 'आनन्दघन' तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'घनआनंद' स्वीकार किया है। कवि का वास्तविक नाम 'घनानन्द' प्रतीत होता है, जिसे कवि ने छन्द की सुविधा की दृष्टि से 'घनआनंद' और 'आनन्दघन' के रूप में प्रयुक्त किया है। साहित्यिक जगत् में 'घनानन्द' नाम सर्वाधिक प्रचलित है।

घनानन्द जाति के कायस्थ थे। ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह रैंगीले के मीरमुंशी थे तथा गायनकला में निष्णात होने के साथ कला पारखी भी थे। कहा जाता है कि घनानन्द बादशाह के दरबार की गायिका 'सुजान' पर अनुरक्त थे। सुजान रूपवती तो थी ही, गायनकला और नृत्यकला में भी पारंगत थी। एक दिन दरबार के कुचक्रियों ने घनानन्द के कंठ और संगीत-कला की प्रशंसा करते हुए बादशाह से इनके गाने की व्यवस्था करने का अनुरोध किया। बादशाह के कहने से इन्होंने नहीं गाया। लोगों ने बादशाह के कान भरे कि सुजान के कहने से यह अवश्य गायेंगे। सुजान के कथन से घनानन्द ने रससिक्त होकर गाया जिससे बादशाह भाव-विभोर हो उठा किन्तु उन्होंने गाते समय सुजान की ओर मुख और बादशाह की ओर पीठ कर ली थी। अतः बादशाह ने असन्तुष्ट होकर इन्हें शहर से निकाल दिया। 'सुजान' ने विश्वासघात करते हुए इनके साथ जाना अस्वीकार कर दिया जिससे ये मर्माहत होकर वृन्दावन चले गये और निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षित हो

गये। सुजान के प्रति इनकी अनुरक्ति विरक्त होने पर भी बनी रही। 'सुजान' शब्द के प्रति इनका विशेष आकर्षण रहा। अहमदशाह अब्दाली के द्वितीय आक्रमण के समय संवत् १८१७ वि० में इनका देहावसान माना जाता है। अब्दाली के सैनिकों ने इनसे 'ज़र' (धन) की माँग की किन्तु इन्होंने ब्रज-रज उनके ऊपर फेंक दी जिससे क्रुद्ध होकर सैनिकों ने इनका वध कर दिया। घनानन्द की कुल ४१ काव्य-कृतियाँ बतायी जाती हैं। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने घनानन्द के समस्त प्राप्त ग्रन्थों का वैज्ञानिक सम्पादन 'घनआनन्द' (ग्रन्थावली) नाम से किया है जिसका प्रकाशन सं० २००६ वि० में हुआ था। घनानन्द की रचनाओं में सुजानहित, वियोगबेलि, इश्कलता यमुनायश, प्रीतिपावस, प्रेमपत्रिका, प्रेम सरोवर, दानघटा, मुरलिका मोद, कृष्ण कौमुदी आदि प्रमुख हैं।

घनानन्द की शृंगार सम्बन्धी रचनाएँ प्रायः कवित्त-सवैयाओं में तथा भक्ति सम्बन्धी रचनाएँ प्रायः पदों और दोहा-चौपाइयों में विरचित हैं। घनानन्द हिन्दी जगत में 'प्रेम की पीर' के कवि के रूप में विख्यात हैं। विरह की तीव्र अनुभूति के कारण इनकी रचनाओं में सहजता, स्वाभाविकता और भाव-प्रवणता है, जो अन्यत्र दुर्लभ है। घनानन्द ने सौन्दर्य, प्रेम और विरह का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। इनकी कविता प्रेमानुभूतियों की अक्षय निधि है। घनानन्द ने रीतिकालीन अन्य कवियों की भाँति नारी के नख-शिख वर्णन की अपेक्षा उसके सूक्ष्म सौन्दर्य का अंकन प्रभावशाली शब्दों में किया है। संयोग वर्णन में भी इनका वैयक्तिक प्रेम उद्घाटित है। प्रेम की गम्भीर और गूढ़ अन्तर्दशाओं का उद्घाटन इनके काव्य में है। घनानन्द का प्रिय के प्रति स्वाभाविक समर्पण है। प्रिय की निष्ठुरता और विश्वासघात तथा उपालम्भ से सन्दर्भित अनेक मार्मिक उद्गार इनकी कविता के प्राणतत्त्व हैं। प्रेम की विलक्षण अभिव्यक्ति के कारण कहीं-कहीं इनका लौकिक प्रेम अलौकिकता का संस्पर्श करता है। इनकी आत्मानुभूति और शब्दचातुरी से 'सुजान' शब्द भगवान् कृष्ण का

वाचक बन गया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार “इन्होंने अपनी कविताओं में बराबर ‘सुजान’ को सम्बोधन किया है जो शृंगार में नायक के लिए और भक्तिभाव में कृष्ण भगवान के लिए प्रयुक्त मानना चाहिए।”

इनके काव्य में सुजान शब्द श्रीकृष्ण, राधा, प्रेमी-पुरुष, प्रेयसी-स्त्री, चतुर, ज्ञानी, व्यक्तिवाचक संज्ञा आदि अनेक अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। उन्होंने जिस निर्भीकता और साहस के साथ लौकिक प्रेम को काव्य का आधार बनाया, वह प्रशंसनीय है। उनके काव्य में आन्तरिक अनुराग की अजस्र धारा प्रवाहित है।

घनानन्द के काव्य में संयोग शृंगार की अपेक्षा वियोगशृंगार का वर्णन अधिक है। विरहव्यथा के वर्णन में वैयक्तिकता का समावेश उन्हें रीतिबद्ध कवियों के काव्य से पृथक् करता है। व्यथित हृदय के विभिन्न मनोभावों का मार्मिक और रसात्मक चित्रण घनानन्द के काव्य में है। उनके शाश्वत विरह में भी आशा की झलक दिखायी देती है। उनके विरह-वर्णन में प्रियजन्य निष्ठुरता, प्रेम का वैषम्य, हृदय की कोमल वृत्तियों की व्यंजना, उपालम्भ की गूढ़ता, अंगों की व्याकुलता, सात्विकता और प्रकृति की उद्दीपकता के रमणीय और आकर्षक चित्र मिलते हैं। घनानन्द की भक्ति में ईश्वर के प्रति तीव्र अनुरक्ति, विरहाकुलता, सघन आस्था और विश्वास है।

घनानन्द के काव्य में भावों की कलात्मक अभिव्यक्ति है। वे काव्यसर्जना के प्रति अत्यन्त सजग रहते हैं, अतः उनके काव्य में अनुभूतिगत प्रवणता और कलात्मक चारुता का मणिकांचन योग है। घनानन्द की भाषा विशुद्ध ब्रजभाषा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार “इनकी सी विशुद्ध, सरस और शक्तिशाली ब्रजभाषा लिखने में और कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व ही है।” इनकी भाषा उक्ति वैचित्र्य, वचनवक्रता, संगीतात्मकता, लाक्षणिकता और माधुर्य

से मण्डित है। मुहावरे और लोकोक्तियों के सटीक और सार्थक प्रयोग से भाषा की रमणीयता में वृद्धि हुई है। घनानन्द के काव्य में अलंकारों का मंजुल और आकर्षक प्रयोग है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विभावना, विरोधाभास, प्रतीप, व्यतिरेक, दृष्टान्त, सन्देह, असंगति आदि अलंकारों का सहज सन्निवेश उनके काव्य-सौन्दर्य को मण्डित करता है। कवित्त और सवैया उनके सर्वाधिक प्रिय छन्द हैं। दोहा, चौपाई, सोरठा, छप्पय, बरवै और पद्यों का प्रयोग भी उन्होंने आवश्यकतानुसार किया है। लय, यति, गति, नाद-सौन्दर्य, वर्णमैत्री आदि की दृष्टि से उनके कवित्त-सवैया चारुतासम्पन्न और उत्कृष्ट हैं।

समग्रतः, प्रेम की गूढ़ता, विरह की गम्भीरता, सूक्ष्म सौन्दर्यान्विति, भावों की मार्मिकता, वाग्विदग्धता, रसात्मकता, सात्विकता, सम्मोहकता, मनोवैज्ञानिकता अन्तर्वृत्तिनिरूपण, लाक्षणिकता, व्यञ्जकता, उदात्त कल्पना-कौशल, सम्प्रेषणीयता तथा अर्थगाम्भीर्य की दृष्टि से घनानन्द का काव्य मनोमुग्धकारी और लालित्यपूर्ण है। उनके मुक्तक हिन्दी मुक्तकों के सौन्दर्य के शिखर का संस्पर्श करते हैं।



कबीरदास

साखी

सतगुर की महिमा अनंत, अनंत किया उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार॥ १॥

दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहुणाँ, बहुरि न आँवौं हट्ट॥ २॥

भली भई जु गुर मिल्या, नहीं तर होती हाँणि।
दीपक दिष्टि पतंग ज्यूँ, पड़ता पूरी जाँणि॥ ३॥

कबीर सतगुर नाँ मिल्या, रही अधूरी सीष।
स्वाँग जती का पहिर करि, घरि घरि माँगै भीष॥ ४॥

सतगुर हम सँ रीझि करि; एक कहा प्रसंग।
बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग॥ ५॥

कबीर निरभै राम जपि, जब लग दीवै बाति।
तेल घट्या बाती बुझी, (तब) सोवैगा दिन राति॥ ६॥

कबीर सूता क्या करै, काहे न देखै जागि।
जाका सँग तैं बीछुड़्या, ताही के सँग लागि॥ ७॥

जिहि घटि प्रीति न प्रेम रस, फुनि रसना नहीं राम।
ते नर इस संसार में, उपजि षये बेकाम॥ ८॥

कबीर राम ध्याइ लै, जिभ्या सौं करि मंत।
हरि सागर जिनि बीसरै, छीलर देखि अनंत॥ ९॥

चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली प्ररभाति।
जे जन बिछुटे राम सँ, ते दिन मिले न राति॥ १०॥

बिरहनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ।
एक सबद कहि पीव का, कब रे मिलैगे आइ॥ ११॥

- चोट सताँणीं बिरह की, सब तन जरजर होइ।
 मारणहारा जाँणिहै, कै जिहिं लागी सोइ॥ १२॥
- बिरह भुवंगम तन बसै, मंत्र न लागै कोइ।
 राम बियोगी ना जिवै, जिवै त बौरा होइ॥ १३॥
- इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्युं जीव।
 लोही सींचौं तेल ज्युं, कब मुख देखौं पीव॥ १४॥
- जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाँहि।
 सब औंधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या माँहि॥ १५॥
- कबीर हरि रस यौं पिया, बाकी रही न थाकि।
 पाका कलस कुँभार का, बहुरि न चढ़ई चाकि॥ १६॥
- हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
 बूँद समानी समुंद मैं, सो कत हेरी जाइ॥ १७॥
- कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ।
 नैनूं रमइया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ॥ १८॥
- कबीर कहा गरबियौ, देही देखि सुरंग।
 बीछड़ियाँ मिलिबौ नहीं, ज्युं काँचली भुवंग॥ १९॥
- यह तन काचा कुंभ है, लियाँ फिरै था साथि।
 ढबका लागा फूटि गया, कछू न आया हाथि॥ २०॥
- जहाँ न चींटी चढ़ि सकै, राई ना ठहराइ।
 मन पवन का गमि नहीं, तहाँ पहुँचे जाइ॥ २१॥
- कबीर माया पापणीं, फंथ ले बैठी हाटि।
 सब जग तौ फंथै पड़्या, गया कबीरा काटि॥ २२॥
- कबीर सो धन संचिए, जो आगैं कूँ होइ।
 सीस चढ़ाए पोटली, ले जात न देख्या कोइ॥ २३॥

चंदन की कुटकी भली नाँ बँबूर की अबराँउँ।
 बैशनों की छपरी भली, नाँ साषत का बड़ गाउँ॥ २४॥
 ना कुछ किया न करि सक्या, नाँ करणे जोग सरीर।
 जे कछु किया सु हरि किया, ताथै भया कबीर कबीर॥ २५॥
 कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस।
 नाँ जाँणै कहाँ मारिसी, कै घर कै परदेस॥ २६॥
 कस्तूरी कुंडलि बसै, मृग ढूँढ़ै बन माँहि।
 ऐसै घटि घटि राँम हैं, दुनियाँ देखै नाँहि॥ २७॥
 निंदक नेड़ा राखिये, आँगणि कुटी बँधाइ।
 बिन सावँण पाँणी बिना, निरमल करै सुभाइ॥ २८॥
 आपन यौ न सराहिए, और न कहिये रंक।
 नाँ जाँणौ किस ब्रिष तलि, कूड़ा होइ करंक॥ २९॥
 कहत सुनत सब दिन गए, उरझि न सुरझ्या मन।
 कहि कबीर चेत्या नहीं, अजहूँ सुपहला दिन॥ ३०॥

सबद

[१]

संतौ भाई आई ग्यान की आँधी रे।
 भ्रम की टाटी सबै उड़ाँणी, माया रहै न बाँधी॥
 हित चित की द्वै धूँनी गिराँनी, मोह बलिंडा टूटा।
 त्रिस्नाँ छाँनि परी घर ऊपरि, कुबुधि का भाँडाँ फूटा॥
 जोग जुगति करि संतौ बाँधी, निरचू चुवै न पाँणी।
 कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जाँणी॥
 आँधी पीछै जो जल बूठा, प्रेम हरि जन भीनाँ।
 कहै कबीर भाँन के प्रगटे उदित भया तम पीनाँ॥

[२]

चलन चलन सब को कहत है।
 नाँ जाँनों बैकुंठ कहाँ है॥
 जोजन एक प्रमिति नहिं जानै, बातन ही बैकुंठ बषानै।
 जब लग है बैकुंठ की आसा, तब लग नहिं हरि चरन निवासा॥
 कहैं सुनें कैसे पतिअइये, जब लग तहाँ आप नहिं जइये।
 कहै कबीर बहु कहिये काहि, साथ संगति बैकुंठहि आहि॥

[३]

पाँडे कौन कुमति तोहि लागी।
 तूँ राम न जपहि अभागी॥
 बेद पुरान पढ़त अस पाँडे, खर चंदन जैसे भारा।
 राम नाम तत समझत नाँहीं, अंति पड़ै मुख छारा॥
 बेद पढ़्याँ का यहु फल पाँडे, सब घटि देखैं रामा।
 जन्म मरन थैं तौ तूँ छूटै, सुफल हूँहि सब काँमाँ॥
 जीव बधत अरु धरम कहत हौ, अधरम कहाँ है भाई।
 आपन तौ मुनिजन है बैठे, का सनि कहों कसाई॥
 नारद कहै ब्यास यों भाषैं, सुखदेव पूछौ जाई।
 कहै कबीर कुमति तब छूटै, जे रहौ राम ल्यौ लाई॥

[४]

पंडित बाद बदते झूठा।
 राम कहाँ दुनियाँ गति पावै, षाँड कहाँ मुख मीठा॥
 पावक कहाँ मूष जे दाझैं, जल कहि त्रिषा बुझाई।
 भोजन कहाँ भूष जे भाजै, तौ सब कोई तिरि जाई॥
 नर कै साथि सुवा हरि बोलै, हरि परताप न जानै।
 जो कबहूँ उड़ि जाइ जंगल में, बहुरि न सुरतै आनै॥
 साँची प्रीति विषै माया सुँ, हरि भगतनि सुँ हासी।
 कहै कबीर प्रेम नहीं उपज्यौ, बाँध्यौ जमपुरि जासी॥

[५]

हम न मरैं मरिहैं संसारा ।

हँम कूँ मिल्या जियावनहारा ॥

अब न मरौं मरनै मन माँना, ते मूए जिनि राम न जाँना ।

साकत मरै संत जन जीवै, भरि भरि राम रसाइन पीवै ॥

हरि मरिहैं तौ हमहूँ मरिहैं, हरि न मरै हँम काहे कूँ मरिहैं ।

कहै कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भये सुख सागर पावा ॥

[६]

राँम मोहि तारि कहाँ लै जैहौ ।

सो बैकुंठ कहौ धूँ कैसा, करि पसाव मोहि दैहौ ॥

जे मेरे जीव दोइ जाँनत हौ, तौ मोहि मुक्ति बताऔ ।

एकमेव रमि रह्या सबनि मैं, तौ काहे भरमावौ ॥

तारण तिरण जबै लग कहिये, तब लग तत न जाँना ।

एक राँम देख्या सबहिन मैं कहै कबीर मन माँना ॥

[७]

हम तौ एक एक करि जाँना ।

दोइ कहै तिनही कौं दोजग, जिन नाँहिन पहिचाँना ॥

एकै पवन एक ही पानी, एक जोति संसारा ।

एक ही खाक घड़े सब भाँड़े, एक ही सिरजनहारा ॥

जैसे बाढ़ी काष्ट ही काटै, अगिनि न काटै कोई ।

सब घटि अंतरि तूँ हीं ब्यापक, धरै सरूपै सोई ॥

माया मोहे अर्थ देखि करि, काहै कूँ गरबाँना ।

निरभै भया कछू नाहिं ब्यापै, कहै कबीर दिवाँना ॥

[८]

हरि जननी मैं बालिक तेरा ।
 काहे न औगुण बकसहु मेरा ॥
 सुत अपराध करै दिन केते, जननी कै चित रहै न तेते ॥
 कर गहि केस करे जौ घाता, तऊ न हेत उतारै माता ॥
 कहैं कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ॥

[९]

बिरहिनी फिरै है नाम अधीरा ।
 उपजि बिनाँ कछू समझि न परई, बाँझ न जानै पीरा ॥
 या बड़ बिथा सोई भल जाँने राँम बिरह सर मारी ।
 कैसो जाँने जिनि यहु लाई, कै जिनि चोट सहारी ॥
 संग की बिछुरी मिलन न पावै सोच करै अरु काहै ।
 जतन करै अरु जुगति बिचारै, रटै राँम कूँ चाहै ॥
 दीन भई बूझै सखियन कौं, कोई मोही राम मिलावै ।
 दास कबीर मीन ज्यूँ तलपै, मिलै भलै सचु पावै ॥

[१०]

जतन बिन मृगनि खेत उजारे ।
 टारे टरत नहीं निस बासुरि, बिडरत नहीं बिडारे ॥
 अपने अपने रस के लोभी, करतब न्यारे न्यारे ।
 अति अभिमान बदत नहीं काहू, बहुत लोग पचि हारे ॥
 बुधि मेरी किरपी, गुर मेरौ बिझुका, आखिर दोइ रखवारे ।
 कहै कबीर अब खान न दैहूँ बरियाँ भली सँभारे ॥

मलिक मुहम्मद जायसी

पदमावत

स्तुति खंड

धनपति उहै जेहिक संसारू । सबै देइ नित, घट न भँडारू ॥
जावत जगत हस्ति औ चाँटा । सब कहँ भुगुति रात दिन बाँटा ॥
ताकर दीठि जो सब उपराहीं । मित्र सत्रु कोई विसरै नाहीं ॥
पंखि पतंग न विसरे कोई । परगट गुप्त जहाँ लगि होई ।
भोग भुगुति बहु भाँति उपाई । सबै खवाई, आप नहि खाई ॥
ताकर उहै जो खाना पियना । सब कहँ देइ भुगुति औ जियना ॥
सबै आसहर ताकर आसा । वह न काहु के आस निरासा ॥

जुग जुग देत घटा नहि, उभै हाथ अस कीन्ह ।

और जो दीन्ह जगत महुँ सो सब ताकर दीन्ह ॥ १ ॥

आदि एक बरनों सोइ राजा । आदि न अंत राज जेहि छाजा ॥
सदा सरबदा राज करेई । औ जेहि चहै राज तेहि देई ॥
छत्रहिं अछत, निछत्रहिं छावा । दूसर नाहिं जो सरवरि पावा ॥
परबत ढाह देख सब लोगू । चाँटहि करै हस्ति सरि-जोगू ॥
बज्रहिं तिनकहिं मारि उड़ाई । तिनहि बज्र करि देइ बड़ाई ॥
ताकर कीन्ह न जानै कोई । करै सोइ जो चित्त न होई ॥
काहू भोग भुगुति सुख सारा । काहू बहुत भूख दुख मारा ॥

सबै नास्ति वह अहथिर, ऐस साज जेहि केर ।

एक साजै औ भाँजै, चहै सँवारै फेर ॥ २ ॥

अलख अरूप अवरन सो कर्ता । वह सब सों, सब ओहि सो बर्ता ।
 परगट गुप्त सो सरबबिआपी । धरमी चीन्ह न चीन्है पापी ॥
 ना ओहि पूत न पिता न माता । ना ओहि कुटुंब न कोइ संग नाता ॥
 जना न काहु, न कोइ ओहि जना । जहँ लगि सब ताकर सिरजना ॥
 वै सब कीन्ह जहाँ लगि कोई । वह नहिं कीन्ह काहु कर होई ॥
 हुत पहिले अरु अब है सोई । पुनि सो रहै रहै नहिं कोई ॥
 और जो होइ सो बाउर अंधा । दिन दुइ चारि मरै करि धंधा ॥

जो चाहा सो कीन्हेसि, करै जो चाहै कीन्ह ।

बरजनहार न कोई, सबै चाहि जिउ दीन्ह ॥ ३ ॥

एहि विधि चीन्हहु करहु गियानू । जस पुरान महुँ लिखा बखानू ॥
 जीउ नाहिं पै जियै गुसाई । कर नाहीं पर करै सबाई ॥
 जीभ नाहिं पै सब किछु बोला । तन नाहीं सब ठाहर डोला ॥
 स्रवन नाहिं पै सब किछु सुना । हिया नाहिं पै सब किछु गुना ॥
 नयन नाहिं पै सब किछु देखा । कौन भाँति अस जाइ बिसेखा ॥
 है नाहीं कोइ ताकर रूपा । ना ओहि सन कोइ आहि अनूपा ॥
 ना ओहि ठाउँ न ओहि बिनु ठाऊँ । रूप रेख बिनु निरमल नाऊँ ॥

ना वह मिला न बेहरा, ऐस रहा भरिपूरि ।

दीठिवंत कहँ नीयरे, अंध मूरखहिं दूरि ॥ ४ ॥

और जो दीन्हेसि रतन अमोला । ताकर मरम न जानै भोला ॥
 दीन्हेसि रसना औ रस भोगू । दीन्हेसि दसन जो बिहँसे जोगू ॥
 दीन्हेसि जग देखन कहँ नैना । दीन्हेसि स्रवन सुनै कहँ बैना ॥
 दीन्हेसि कंठ बोल जेहि माहाँ । दीन्हेसि कर-पल्लौ बर बाँहा ॥
 दीन्हेसि चरन अनूप चलाहीं । सो जानइ जेहि दीन्हेसि नाहीं ॥
 जोबन मरम जान पै बूढ़ा । मिला न तरुनाषा जग दूँढा ॥
 दुख कर मरम न जाने राजा । दुखी जान जापर दुख बाजा ॥

काया करम जान पै रोगी, भोगी रहैं निचिंत ।

सब कर मरम गोसाई (जान) जो घट घट रहै नित ॥ ५ ॥

मानसरोदक खंड

एक दिवस पून्यौ तिथि आई । मानसरोदक चली नहाई ॥
 पदमावति सब सखी बुलाई । जनु फुलवारि सबै चलि आई ॥
 कोई चंपा कोई कुंद सहेली । कोई सुकेत, करना, रस बेली ॥
 कोई सु गुलाल सुदरसन राती । कोई सो बकावरि-बकुचन भाँती ॥
 कोई सो मौलसिरि, पहुपावती । कोई जाही जूही सेवती ॥
 कोई सोनजरद, कोई केसर । कोई सिंगारहार नागेसर ॥
 कोई कूजा सदबर्ग चमेली । कोई कदम सुरस रस बेली ॥

चलीं सबै मालति संग, फूलीं कवँल कुमोद ।
 बेधि रहे गन गँधरब, बास-परमदामोद ॥ १ ॥

खेलत मानसरोवर गई । जाइ पाल पर ठाढ़ी भई ॥
 देखि सरोवर हँसै कुलेली । पदमावति सौं कहहिं सहेली ॥
 ए रानी ! मन देखु बिचारी । एहि नैहर रहना दिन चारी ॥
 जौ लगि अहै पिता कर राजू । खेलि लेहु जो खेलहु आजू ॥
 पुनि सासुर हम गवनब काली । कित हम, कित यह सरवर पाली ॥
 कित आवन पुनि अपने हाथा । कित मिलि कै खेलब एक साथी ॥
 सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेहीं । दारुन सासुर न निसरै देहीं ॥

पिउ पियार सिर ऊपर, पुनि सो करै दहुँ काह ।

दहुँ सुख राखै की दुख, दहुँ कस जनम निबाह ॥ २ ॥

मिलहिं रहसि सब चढ़हिं हिंडोरी । झूलि लेहिं सुख बारी भोरी ॥
 झूलि लेहु नैहर जब ताई । फिरि नहिं झूलन देहहिं साई ॥
 पुनि सासुर लेइ राखिहिं तहाँ । नैहर चाह न पाउब जहाँ ॥
 कित यह धूप, कहाँ यह छाहाँ । रहब सखी बिनु मंदिर माहाँ ॥

गुन पूछिहि औ लाइहि दोखू । कौन उतर-पाउब तहँ मोखू ॥
 सासु ननद के भौह सिकोरे । रहब सँकोचि दुवौ कर जोरे ॥
 कित यह रहसि जो आउब करना । ससुरेइ अंत जनम दुख भरना ॥

कित नैहर पुनि आउब, कित ससुरे यह खेल ।
 आपु आपु कहँ होइहि, परब पंखि जस डेल ॥ ३ ॥

सरवर तीन पदमिनी आई । खोंपा छोरि केस मुकलाई ॥
 ससिमुख, अंग मलयगिरि बासा । नागिन झाँपि लीन्ह चहुँ पासा ॥
 ओनई घटा परी जग छाँहा । ससि कै सरन लीन्ह जनु राहाँ ॥
 छपि गै दिनहिं भानु कै दसा । लेइ निसि नखत चाँद परगसा ॥
 भूलि चकोर दीठि मुख लावा । मेघघटा महँ चंद देखावा ॥
 दसन दामिनी, कोकिल भाखी । भौहैं धनुख गगन लेइ राखी ॥
 नैन खँजन दुई केलि करेहीं । कुच नारंग मधुकर रस लेहीं ॥

सरवर रूप बिमोहा, हिये हिलोरहिं लेइ ।
 पाँव छुवै मकु पावों एहि मिस लहरहिं देइ ॥ ४ ॥

धरी तीर सब कंचुकि सारी । सरवर महँ पैठी सब बारी ॥
 पाइ नीर जानों सब बेली । हुलसहिं करहिं काम कै केली ॥
 करिल केस बिसहर बिस-भरे । लहरैं लेहिं कवँल मुख धरे ॥
 नवल बसंत सँवारी करी । होई प्रगट जानहु रस-भरी ॥
 उठी कोप जस दारिबँ दाखा । भई अनंत पेम कै साखा ॥
 सरवर नहिं समाइ संसारा । चाँद नहाइ पैठ लेइ तारा ॥
 धनि सो नीर ससि तरई ऊई । अब कित दीठ कमल औ कूई ॥

चकई बिछुरि पुकारै, कहाँ मिलौ, हो नाहँ ।
 एक चाँद निसि सरग महँ, दिन दूसर जल माहँ ॥ ५ ॥

लागीं केलि करै मझ नीरा । हंस लजाइ बैठ ओहि तीरा ॥
 पदमावति कौतुक कहँ राखी । तुम ससि होहु तराइन्ह साखी ॥
 बाद मेलि कै खेल पसारा । हार देइ जो खेलत हारा ॥
 सँवरिहि साँवरि, गोरिहि गोरी । आपनि आपनि लीन्ह सो जोरी ॥
 बूझि खेल खेलहु एक साथ । हार न होइ पराए हाथा ॥
 आजुहि खेल, बहुरि कित होई । खेल गए कित खेलै कोई ? ॥
 धनि सो खेल खेल सह पेमा । रउताई औ कूसल खेमा ? ॥

मुहमद बाजी पेम कै, ज्यों भावै त्यों खेल ।

तिल फूलहिं के संग ज्यों होइ फुलायल तेल ॥ ६ ॥

सखी एक तेइ खेल न जाना । भै अचेत मनि-हार गवाँना ॥
 कवँल डार गहि भै बेकरारा । कासौं पुकारौं आपन हारा ॥
 कित खेलै आइउँ एहि साथ । हार गँवाइ चलिउँ लेइ साथ ॥
 घर पैठत पूँछब यह हारु । कौन उतर पाउब पैसारु ॥
 नैन सीप आँसू तस भरे । जानौ मोति गिरहिं सब ढरे ॥
 सखिन कहा बौरी कोकिला । कौन पानि जेहि पौन न मिला ? ॥
 हार गँवाइ सो ऐसे रोवा । हेरि हेराइ लेइ जौं खोवा ॥

लागीं सब मिलि हेरै, बूड़ि बूड़ि एक साथ ।

कोइ उठी मोती लेइ, काहू घोंघा हाथ ॥ ७ ॥

कहा मानसर चाह सो पाई । पारस रूप इहाँ लगि आई ॥
 भा निरमल तिन्ह पायन्ह परसे । पावा रूप रूप के दरसे ॥
 मलय समीर बास तन आई । भा सीतल, भै तपनि बुझाई ॥
 न जनों कौन पौन लेइ आवा । पुन्य दसा भै पाप गँवावा ॥
 ततखन हार बेगि उतिराना । पावा सखिन्ह चंद बिहँसाना ॥
 बिगसा कुमुद देखि ससि रेखा । भै तहँ ओप जहाँ जोइ देखा ॥
 पावा रूप रूप जस चहा । ससि मुख जनु दरपन होइ रहा ॥

नयन जो देखा कवँल भा, निरमल नीर सरीर ।

हँसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर ॥ ८ ॥

नखशिख खंड

का सिंगार ओहि बरनों, राजा । ओहिक सिंगार ओहि पै छाजा ॥
 प्रथम सीस कस्तूरी केसा । बलि बासुकि, का और नरेसा ॥
 भौर केस वह मालति रानी । बिसहर लुरे लेहिं अरघानी ॥
 बेनी छोरि झार जौं बारा । सरग पतार होइ अँधियारा ॥
 कौंवर कुटिल केस नग कारे । लहरन्हि भरे भुअँग बैसारे ॥
 बेधे जनों मलयगिरि बासा । सीस चढ़े लोटहिं चहुँ पासा ॥
 घुँघरवार अलकैं विषभरी । सँकरैं पेम चहैं गिउ परी ॥

अस फँदवार केस वे, परा सीस गिउ फाँद ।

अस्टौ कुरी नाग सब, अरुझ केस के बाँद ॥ १ ॥

बरनों माँग सीस उपराहीं । सेंदुर अबहिं चढ़ा जेहि नाहीं ॥
 बिनु सेंदुर अस जानहु दीआ । उजियर पंथ रैन महँ कीआ ॥
 कंचन रेख कसौटी कसी । जनु घन महँ दामिनि परगसी ॥
 सुरुज-किरिन जनु गगन बिसेखी । जमुना माँह सुरसती देखी ॥
 खाँड़ै धार रुहिर जनु भरा । करवत लेइ बेनी पर धरा ॥
 तेहि पर पूरि धरे जो मोती । जमुना माँझ गंग कै सोती ॥
 करवत तपा लेहिं होइ चूरु । मकु सो रुहिर लेइ देइ सेंदूरु ॥

कनक दुवादस बानि होइ, चह सोहाग वह माँग ।

सेवा करहिं नखत सब, उवै गगन जस गाँग ॥ २ ॥

कहाँ लिलार, दुइज कै जोती । दुइजहि जोति कहाँ जग ओती ॥
 सहस किरिन जो सुरुज विपाई । देखि लिलार सोउ छपि जाई ॥

का सरिवर तेहि देउँ मयंकू । चाँद कलंकी, वह निकलंकू ॥
 औ चाँदहि पुनि राहु गरासा । वह बिनु राहु सदा परगासा ॥
 तेहि लिलार पर तिलक बईठा । दुइज पाट जानहु धुव दीठा ॥
 कनक पाट जनु बैठा राजा । सबै सिँगार अत्र लेइ साजा ॥
 ओहि आगे थिर रहा न कोऊ । दहुँ का कहँ अस जुरै सँजोऊ ॥

खरग, धनुक, चक बान दुइ, जग मारन तिन्ह नावँ ।

सुनि कै परा मुरुछि कै, (राजा) मोकहँ हए कुठावँ ॥ ३ ॥

भौहें स्याम धनुक जनु ताना । जा सहूँ हेर भार बिष बाना ॥
 हनै धुनै उन्ह भौहनि चढ़े । केइ हथियार काल अस गढ़े ? ॥
 उहै धनुक किरसुन पर अहा । उहै धनुक राघौ कर गहा ॥
 ओहि धनुक रावन संघारा । ओहि धनुक कंसासुर मारा ॥
 ओहि धनुक बेधा हुत राहू । मारा ओहि सहस्राबाहू ॥
 उहै धनुक मैं तापहँ चीन्हा । धानुक आप बेझ जग कीन्हा ॥
 उन्ह भौहनि सरि केउ न जीता । अछरी छपीं, छपीं गोपीता ॥

भौह धनुक धनि धानुक, दूसर सरि न कराइ ।

गगन धनुक जो ऊगै, लाजहिं सो छपि जाइ ॥ ४ ॥

नैन बाँक, सरि पूज न कोऊ । मानसरोदक उथलहिं दोऊ ॥
 राते कँवल करहिं अलि भवाँ । घूमहिं माति चहहिं अपसवाँ ॥
 उठहिं तुरंग लेहिं नहिं बागा । चाहहिं उलथि गगन कहँ लागा ॥
 पवन झकोरहिं देइ हिलोरा । सरग लाइ भुइँ लाइ बहोरा ॥
 जग डोलै डोलत नैनाहाँ । उलटि अड़ार जाहिं पल माहाँ ॥
 जबहिं फिराहिं गगन गहि बोरा । अस वै भौर चक्र के जोरा ॥
 समुद हिलोर फिरहिं जनु झूले । खंजन लरहिं, मिरिग जनु भूले ॥

सुभर सरोवर नयन वै, मानिक भरे तरंग ।

आवत तीर फिरावहीं , काल भौर तेहि संग ॥ ५ ॥

बरुनी का बरनों इमि बनी । साधे बान जानु दुइ अनी ।
 जुरी राम रावन कै सैना । बीच समुद्र भए दुइ नैना ।
 बारहिं पार बनावरि साधा । जासहुँ हेर लाग बिष-बाधा ।
 उन्ह बानन्ह अस को जो न मारा । बेधि रहा सगरौ संसारा ।
 गगन नखत जो जाहि न गने । वै सब बान ओही के हने ।
 धरती बान बेधि सब राखी । साखी ठाढ़ देहि सब साखी ।
 रोवैं रोवैं मानुष तन ठाढ़े । सूतहिं सूत बेध अस गाढ़े ।

बरुनि बान अस ओपहँ, बेधे रन बन ढाँख ।

सौजहिं तन सब रोवाँ, पंखिहि तन सब पाँख ॥ ६ ॥

नासिक खरग देउँ कह जोगू । खरग खीन, वह बदन-सँजोगू ।
 नासिक देखि लजानेउ सूआ । सूक आइ बेसरि होइ ऊआ ।
 सुआ जो पिअर हिरामन लाजा । और भाव का बरनों राजा ।
 सुआ, सो नाक कठोर पँवारी । वह कोंवर तिल पुहुप सँवारी ।
 पुहुप सुगंध करहिं एहि आसा । मकु हिरकाइ लेइ हम्ह पासा ।
 अधर दसन पर नासिक सोभा । दारिउँ बिंब देखि सुक लोभा ।
 खंजन दुहुँ दिसि केलि कराहीं । दुहुँ वह रस कोउ पाव कि नाही ।

देखि अमिय अस अधरन्ह, भएउ नासिका कीर ।

पौन बास पहुँचावैं, अस रम छाँड़ न तीर ॥ ७ ॥

अधर सुरंग अमी-रस भरे । बिंब सुरंग लाजि बन फरे ।
 फूल दुपहरी जानौ राता । फूल झरहिं ज्यों ज्यों कह बाता ।
 हीरा लेइ सो बिद्रुम धारा । बिहँसत जगत होइ उजियारा ।
 भए मँजीठ पानन्ह रँग लागे । कुसुम-रँग थिर रहै न आगे ।
 अस कै अधर अमी भरि राखे । अबहिं अछूत, न काहूँ चाखे ।
 मुख तँबोल रँग धारहिं रसा । केहि मुख जोग जो अमृत बसा ? ।
 राता जगत देखि रँगराती । रुहिर भरे आछहि बिहँसाती ॥

अमी अधर अस राजा, सब जग आस करेइ ।

केहि कहँ कवल बिगासा, को मधुकर रस लेइ ? ॥ ८ ॥

दसन चौक बैठे जनु हीरा । औ बिच बिच रंग स्याम गंभीरा ॥
जस भादौ दिसि दामिनी दिसी । चमक उठै तस बनी बतीसी ॥
वह सुजोति हीरा उपराहीं । हीरा जोति सो तेहि परछाहीं ॥
जेहि दिन दसनजोति निरमई । बहुतै जोति जोति ओहि भई ॥
रबि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती । रतन पदारथ मानिक मोती ॥
जहँ जहँ बिहसि सुभावहिं हँसी । तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी ॥
दामिनि दमकि न सरवरि पूजी । पुनि ओहि जोति और को दूजी? ॥

हँसत दसन अस चमके, पाहन उठे झरक्कि ।
दारिऊँ सरि जो न कै सका, फाटेउ हिया दरक्कि ॥ ६ ॥

रसना कहौ जो कह रस बाता । अमृत बैन सुनत मन राता ॥
हरै सो सुर चातक कोकिला । बिनु बसंत यह बैन न मिला ॥
चातक कोकिल रहहिं जो नाहीं । सुनि वह बैन लाज छपि जाहीं ॥
भरे प्रेमरस बोलै बोला । सुनै सो माति घूमि के डोला ॥
चतुरबेद मत सब ओहि पाहाँ । रिग, जजु, साम अधरवन माहाँ ॥
एक एक बोल अरथ चौगुना । इंद्र मोह, बरम्हा सिर धुना ॥
अमर, भागवत, पिंगल गीता । अरथ बूझि पंडित नहिं जीता ॥

भासवती औ व्याकरन, पिंगल पढ़ै पुरान ।
बेद भेद सौं बात कह, सुजनन्ह लागै बान ॥ १० ॥

पुनि बरनों का सुरँग कपोला । एक नारँग दुइ किए अमोला ॥
पहुप पंक रस अमृत साँधे । केइ यह सुरँग खरौरा बाँधे ? ॥
तेहि कपोल बाएँ तिल परा । जेइ तिल देखि सो तिल तिल जरा ॥
जनु घुँघची ओहि तिल करमुहीं । बिरह बान साधे सामुहीं ॥
अग्निनि बान जानौ तिल सूझा । एक कटाछ लाख दस जूझा ॥
सो तिल गाल मेटि नहिं गएऊ । अब वह गाल काल जग भएऊ ॥
देखत नैन परी परिछाहीं । तेहि तैं रात साम उपराहीं ॥

सो तिल देखि कपोल पर, गगन रहा धुव गाड़ि ।

खिनहिं उठै खिन बूड़ै, डोलै नहिं तिल छाँड़ि ॥ ११ ॥

स्रवन सीप दुइ दीप सँवारे । कुंडल कनक रचे उजियारे ॥
 मनि कुंडल झलकै अति लोने । जनु कौंथा लौकहि दुइ कोने ॥
 दुहुँ दिसि चाँद सुरुज चमकाहीं । नखतन्ह भरे निरखि नहिं जाहीं ॥
 तेहि पर खूँट दीप दुइ बारे । दुइ ध्रुव दुऔ खूँट बैसारे ॥
 पहिरे खुंभी सिंघलदीपी । जनों भरी कचपचिआ सीपी ॥
 खिन खिन जबहिं चीर सिर गहै । काँपति बीजु दुऔ दिसि रहै ॥
 डरपहिं देवलोक सिंघला । परै न बीजु टूटि एक कला ॥

करहिं नखत सब सेवा स्रवन दीन्ह अस दोउ ।

चाँद सुरुज अस गोहने और जगत का कोउ ? ॥१२॥



सूरदास

[१]

अबिगत-गति कछु कहत न आवै ।
 ज्यों गूँगें मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै ।
 परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै ।
 मन-बानी को अगम-अगोचर, सो जाने जो पावै ।
 रूप-रेख-गुन-जाति जुगति-बिनु निरालंब कित धावै ।
 सब बिधि अगम बिचारहिं तातै सूर सगुन-पद गावै ॥

[२]

आजु हों एक-एक करि टरिहों ।
 कै तुमहीं, कै हमही माधौ, अपने भरोसे लरिहों ।
 हों तो पतित सात पीढ़िनि को, पतितै है निस्तरिहों ।
 अब हों उघरि नच्यौ चाहत हों, तुम्हें बिरद बिनु करिहों ।
 कत अपनी परतीति नसावत, मैं पायो हरि हीरा ।
 सूर पतित तबहीं उठिहै प्रभु, जब होंसि देहो बीरा ॥

[३]

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल ।

काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना कंठ बिषय की माल ।
महामोह के नूपुर बाजत, निंदा-सब्द-रसाल ।
भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल ।
तृष्णा नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल ।
माया को कटि फेंटा बाँध्यौ, लोभ-तिलक दियौ भाल ।
कोटिक कला, काष्ठि दिखराई, जल-थल सुधि नहिं काल ।
सूरदास की सबै अबिद्या, दूरि करौ नँदलाल ।

[४]

तजौ मन, हरि बिमुखनि कौ संग ।
जिनकैं संग कुमति उपजति है, परत भजन में भंग ।
कहा होत पय पान कराएँ, बिष नहिं तजत भुजंग ।
कागहिं कहा कपूर चुगाएँ, स्वान न्हवाएँ गंग ।
खर कौ कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषन-अंग ।
गज कौ कहा सरित अन्हवाएँ, बहुरि धरे वह ढंग ।
पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतौ करत निषंग ।
सूरदास कारी कामरि पै, चढ़त न दूजौ रंग ॥

[५]

चकई री, चलि चरन-सरोवर, जहाँ न प्रेम बियोग ।
जहँ भ्रम-निसा होति नहिं कबहुँ, सोइ सायर सुख जोग ।
जहाँ सनक-सिव हंस मीन मुनि, नख रबि-प्रभा प्रकास ।
प्रफुलित कमल, निमिष नहिं ससि-डर, गुंजत निगम सुबास ।
जिहिं सर सुभग-मुक्ति-मुक्ताफल, सुकृत-अमृत-रस पीजै ।
सो सर छाँड़ि कुबुद्धि बिहंगम, इहाँ कहा रहि कीजै ।
लक्ष्मी सहित होति नित क्रीड़ा, सोभित सूरजदास ।
अब न सुहात बिषय-रस छीलरु, वा समुद्र की आस ॥

[६]

सोभा सिंधु न अन्त रही री।

नंद-भवन भरि पूरि उमंगि चलि, ब्रज की वीथिनि फिरति बही री।

देखी जाइ आजु गोकुल में, घर-घर बैचति फिरति दही री।

कहँ लागि कहौ बनाइ बहुत बिधि, कहत न मुख सहसहुँ निबही री।

जसुमति-उदर-अगाध-उदधि तैं, उपजी ऐसी सबनि कही री।

सूरस्याम प्रभु इंद्र-नीलमनि, ब्रज-बनिता उर लाइ गही री॥

[७]

सोभित कर नवनीत लिये।

घुटुरुनि चलत रेनु-तन-मंडित, मुख दधि लेप किये।

चारु कपोल, लोल लोचन, गोरोचन-तिलक दिये।

लट-लटकनि मनु मत्त मधुप-गन मादक मधुहिं पिए।

कठुला-कंठ, बज्र केहरि-नख, राजत रुचिर हिए।

धन्य सूर एकौ पल इहिं सुख, का सत कल्प जिए॥

[८]

जब हरि मुरली अधर धरत।

थिर चर, चर थिर, पवन थकित रहै, जमुनाजल न बहत।

खग मोहैं, मृग-जूथ भुलाहीं, निरखि मदन-छवि छरत।

पसु मोहैं सुरभी बिथकित, तृन दंतनि टेंकि रहत।

सुक सनकादि सकल मुनि मोहैं, ध्यान न तनक गहत।

सूरदास भाग हैं तिनके, जे या सुखहिं लहत॥

[६]

२०१०

मानो भाई घन घन अंतर, दामिनि ।
 घन दामिनि दामिनि घन अंतर, सोभित हरि-ब्रज भामिनि ।
 जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर, सरद-सुहाई-जामिनि ।
 सुंदर ससि गुन रूप-राग-निधि, अंग-अंग अभिरामिनि ।
 रच्यौ रास मिलि रसिक राइ सौ, मुदित भई गुन ग्रामिनि ।
 रूप-निधान स्यामसुंदर घन, आनंद मन बिस्त्रामिनि ।
 खंजन-मीन-मयूर-हंस-पिक, भाइ-भेद गज-गामिनि ।
 को गति गनै सूर मोहन संग, काम बिमोहौ कामिनि ॥

[१०]

उपमा हरि-तनु देखि लजानी ।
 कोउ जल में, कोउ बननि रहैं दुरि, कोउ कोउ गगन समानी ।
 मुख निरखत ससि गयौ अम्बर कौ, तड़ित दसन-छवि हेरि ।
 मीन कमल कर-चरन नयन डर, जल में कियौ बसेरि ।
 भुजा देखि अहिराज लजाने, बिबरन पैठे धाइ ।
 कटि निरखत केहरि डर मान्यौ, बन-बन रहे दुराइ ।
 गारी देहिं कबिनि कै बरनत, श्री-अँग पटतर देत ।
 सूरदास हमकोँ सरमावत, नाउँ हमारौ लेत ॥

[११]

अँखियाँ हरि कै हाथ बिकानी ।
 मृदु मुसुकानि मोल इनि लीन्हीं, यह सुनि सुनि पछितानी ।
 कैसेँ रहति रहैं मेरेँ बस, अब कुछ औरै भाँति ।
 अब वे लाज मरतिं मोहिँ देखत, बैठी मिलि हरि-पाँति ।
 सपने की सी मिलनि करति हैं, कब आवति कब जाति ।
 सूर मिलीं ढरि नँद-नन्दन कौ, अनत नहीं पतियाति ॥

[१२]

चितवनि रोकै हूँ न रही ।

स्याम सुंदर सिंधु-सनसुख, सरित उमौंगे बही ।

प्रेम-सलिल-प्रवाह भँवरनि, मिति, न कबहुँ लही ।

लोभ-लहर-कटाच्छ, घूँघट-पट-करार ढही ।

थके पल पथि, नाव धीरज परति नहिंन गही ।

मिली सूर सुभाव स्यामहिं, फेरिहूँ न चही ॥

[१३]

देखियत कालिंदी अति कारी ।

अहौ पथिक कहियौ उन हरि सौं, भयी बिरह जुर जारी ।

गिरि-प्रजंक तैं गिरति धरनि धसि, तरंग तरफ तन भारी ।

तट बारू उपचार चूर, जल-पूर प्रस्वेद पनारी ।

बिगलित कच कुस काँस कुल पर, पंक जू काजल सारी ।

भौर भ्रमत अति फिरति भ्रमित गति, निसि दिन दीन दुखारी ।

निसि दिन चकई पिय जु रटति है, भई मनौ अनुहारी ।

सूरदास-प्रभु जो जमुना गति, सो गति भई हमारी ।

[१४]

सखी इन नैननि तैं घन हारे ।

बिनहीं रितु बरषत निसि बासर, सदा मलिन दोउ तारे ।

ऊरध स्वास समीर तेज अति, सुख अनेक द्रुम डारे ।

बदन सदन करि बसे बचन खग, दुख पावस के मारे ।

दुरि दुरि बूँद परत कंचुकि पर, मिलि अंजन सौं कारे ।

मानौ परनकुटी सिव कीन्हीं, बिबि मूरति धरि न्यारे ।

धुमरि धुमरि बरषत जल छाँड़त, डर लागत औधियारे ।

बूड़त ब्रजहिं सूर को राखै, बिनु गिरिवरधर प्यारे ॥

[१५]

पिय बिनु नागिनि कारी-रात ।
 जौ कहूँ जामिनि उबति जुन्हैया, डसि उलटी है जात ।
 जंत्र न फुरत मंत्र नहिं लागत, प्रीति सिरानी जात ।
 सूर स्याम बिनु बिकल बिरहिनी, मुरि मुरि लहरैं खात ॥

[१६]

दूरि करहि बीना कर धरिबौ ।
 रथ थाक्यौ, मानौ मृग मोहे, नाहिंन होत चंद्र कौ ढरिबौ ।
 बीतै जाहि सोइ पै जानै, कठिन सु प्रेम पास को परिबौ ।
 प्राननाथ संगहिं तैं बिछुरे, रहत न नैन नीर को झरिबौ ।
 सीतल चंद अगिन सम लागत, कहिए धीर कौन बिधि धरिबौ ।
 सूर सु कमलनयन के बिछुरैं, झूठै सब जतननि कौ करिबौ ॥

[१७]

कोउ माई बरजै री या चंदहिं ।
 अति हीं क्रोध करत है हम पर, कुमुदिनि कुल आनन्दहिं ।
 कहाँ कहौ बरषा रबि तमचुर, कमल बलाहक कारे ।
 चलत न चपल रहत थिर कै रथ, बिरहिनि के तन जारे ।
 निंदति सैल उदधि पन्नग कौ, श्रीपति कमठ कठोरहिं ।
 देतिं असीस जरा देवी कौ, राहु केतु किन जोरहिं ।
 ज्यों जल-हीन मीन तन तलफतिं, ऐसी गति ब्रजबालहिं ।
 सूरदास अब आनि मिलावहु, मोहन मदन गुपालहिं ॥

[१८]

निरखतिं अंक स्याम सुन्दर के, बार-बार लावतिं लै छाती ।
 लोचन जल कागद मसि मिलि कै, है गई स्याम स्याम जू क्री पाती ।
 गोकुल बसत नंदनंदन के, कबहुँ बयारि न लागी ताती ।
 अरु हम उती कहा कहैं ऊधो, जब सुनि बेनु नाद संग जाती ।
 उनकैं लाड़ बदति नहिं काहू, निसि दिन रसिक-रास-रस राती ।
 प्रान-नाथ तुम कबहिं, मिलौगे, सूरदास प्रभु बाल-संघाती ॥

[१९]

उपमा नैन न एक रही ।

कबि जन कहत कहत सब आये, सुधि कर नाहिं कही ।
 कहि चकोर बिधु मुख बिनु जीवत, भ्रमर नहीं उड़ि जात ।
 हरि-मुख कमल कोष बिछुरे तैं, ठाले कत ठहरात ।
 ऊधौ बधिक ब्याध है आए, मृग सम क्यों न पलात ।
 भागि जाहिं बन सघन स्याम मैं, जहाँ न कोऊ घात ।
 खंजन मन-रंजन न होहिं ये, कबहुँ नहीं अकुलात ।
 पंख पसारि न होत चपल गति, हरि समीप मुकुलात ।
 प्रेम न होइ कौन बिधि कहिये, झूठैं हीं तन आड़त ।
 सूरदास मीनता कछू इक, जल भरि कबहुँ न छाँड़त ॥

[२०]

काहे कौं रोकत मारग सूधौ ।

सुनहु मधुप निरगुन कंटक तैं, राजपंथ क्यों रूँधौ ।
 कै तुम सिखि पठए हौ कुबिजा, कहाँ स्याम घनहुँ धौं ।
 बेद पुरान सुमृति सब दूँदौ, जुवतिनि जोग कहूँ धौं ।
 ताकौ कहा परेखौ कीजै, जानै छँछ न दूधौ ।
 सूर मूर अक्रूर गयौ लै, ब्याज निबेरत ऊधौ ॥

[२१]

ऊधौ जोग जोग हम नाहीं ।

अबला सार-ज्ञान कह जानैं, कैसें ध्यान धराहीं ।
तेई मूँदन नैन कहत हौ, हरि मूरति जिन माहीं ।
ऐसी कथा कपट की मधुकर, हमतैं सुनी न जाहीं ।
स्रवन चीरि सिर जटा बँधावहु, ये दुख कौन समाहीं ।
चंदन तजि अँग भस्म बतावत, बिरह-अनल अति दाहीं ।
जोगी भ्रमत जाहिं लगि भूले, सो तौ है अप माहीं ।
सूरस्याम तैं न्यारी न पल छिन, ज्यों घट तैं परछाहीं ॥

[२२]

लरिकाई कौ प्रेम कहौ अलि कैसें छूटत ।

कहा कहौ ब्रजनाथ चरित, अंतरगति लूटत ॥
वह चितवनि वह चाल मनोहर, वह मुसकानि मंद-धुनि गावनि ।
नटवर-भेष नंद-नंदन कौ, वह बिनोद, वह बन तैं आवनि ।
चरन कमल की सौंह करति हौं, यह संदेस मोहिं बिष सौं लागत ।
सूरदास पल मोहिं न बिसरति, मोहन मूरति सोवत जागत ॥

[२३]

बिनु गुपाल बैरिन भई कुंजें ।

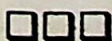
तब वै लता लगति तन सीतल, अब भई बिषम ज्वाल की पुंजें ।
बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल-फूलनि अलि गुंजें ।
पवन, पान, घनसार, सजीवन, दधि-सुत किरनि भानु भई भुंजें ।
यह ऊधौ कहियौ माधौ सौं, मदन मारि कीन्हीं हम लुंजें ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौ, मग-जोवत आँखियाँ भई गुंजें ॥

[२४]

ब्रज के बिरही लोग दुखारे ।
 बिन गोपाल ठगे से ठाढ़े, अति दुर्बल तन कारे ।
 नंद जसोदा मारग जोवति, निसि-दिन साँझ सकारे ।
 चहुँ-दिसि कान्ह-कान्ह कहि टेरत, अँसुवन बहत पनारे ।
 गोपी, ग्वाल, गाइ, गोसुत सब, अतिहीं दीन बिचारे ।
 सूरदास-प्रभु बिनु यों देखियत, चंद बिना ज्यों तारे ॥

[२५]

ऊधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाही ।
 हंस सुता की सुंदर कगरी, अरु कुंजनि की छाहीं ।
 वै सुरभी, वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं ।
 ग्वाल-बाल मिलि करत कुलाहल, नाचत गहि गहि बाहीं ।
 यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि मुक्ताहल जाहीं ।
 जबहिं सुरति आवति वा सुख की, जिय उमगत तन नाही ।
 अनगन भौति करी बहु लीला, जसुदा नंद निबाहीं ।
 सूरदास प्रभु रहै मौन है, यह कहि कहि पछिताहीं ॥



तुलसीदास

रामचरितमानस (उत्तरकाण्ड)

राम राज बैठें त्रैलोका । हरषित भए गए सब सोका ॥
बयरु न कर काहू सन कोई । राम प्रताप बिषमता खोई ॥

बरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग ।

चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग ॥ १ ॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा । राम राज नहिं काहुहि ब्यापा ॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती । चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती ॥
चारिउ चरन धर्म जग माहीं । पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं ॥
राम भगति रत नर अरु नारी । सकल परम गति के अधिकारी ॥
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा । सब सुंदर सब बिरुज सरीरा ॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना । नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना ॥
सब निर्दभ धर्मरत पुनी । नर अरु नारि चतुर सब गुनी ॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी । सब कृतग्य नहिं कपट सयानी ॥

राम राज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं ।

काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं ॥ २ ॥

भूमि सप्त सागर मेखला । एक भूप रघुपति कोसला ॥
भुअन अनेक रोम प्रति जासू । यह प्रभुता कछु बहुत न तासू ॥
सो महिमा समुझत प्रभु केरी । यह बरनत हीनता घनेरी ॥
सोउ महिमा खगेस जिन्ह जानी । फिरि एहिं चरित तिन्हहुँ रति मानी ॥
सोउ जाने कर फल यह लीला । कहहिं महा मुनिबर दमसीला ॥
राम राज कर सुख संपदा । बरनि न सकइ फनीस सारदा ॥

सब उदार सब पर उपकारी । बिप्र चरन सेवक नर नारी ॥
एकनारि ब्रत रत सब झारी । ते मन बच क्रम पति हितकारी ॥

दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज ।

जीतहु मनहि सुनिअ अस रामचंद्र के राज ॥ ३ ॥

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन । रहहिं एक संग गज पंचानन ॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई । सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई ॥
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा । अभय चरहिं बन करहिं अनंदा ॥
सीतल सुरभि पवन बह मंदा । गुंजत अलि लै चलि मकरंदा ॥
लता बिटप मागें मधु चवहीं । मनभावतो धेनु पय स्रवहीं ॥
ससि संपन्न सदा रह धरनी । त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी ॥
प्रगटीं गिरिन्ह बिबिधि मनि खानी । जगदातमा भूप जग जानी ॥
सरिता सकल बहहिं बर बारी । सीतल अमल स्वाद सुखकारी ॥
सागर निज मरजादाँ रहहीं । डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं ॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा । अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा ॥

बिधु महि. पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज ।

मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र के राज ॥ ४ ॥

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे । दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे ॥
श्रुति पथ पालक धर्म धुरंधर । गुनातीत अरु भोग पुरंदर ॥
पति अनुकूल सदा रह सीता । सोभा खानि सुसील बिनीता ॥
जानति कृपासिंधु प्रभुताई । सेवति चरन कमल मन लाई ॥
जद्यपि गृहँ सेवक सेवकिनी । बिपुल सदा सेवा बिधि गुनी ॥
निज कर गृह परिचरजा करई । रामचंद्र आयसु अनुसरई ॥
जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ । सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ ॥
कौसल्यादि सासु गृह माहीं । सेवइ सबहिन्ह मान मद जाहीं ॥
उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता । जगदंबा संततमनिंदिता ॥

जासु कृपा कटाच्छु सुर चाहत चितव न सोइ ।

राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ ॥ ५ ॥

बरवै रामायण

सम सुवरन सुखमाकर सुखद न थोर।
 सीय अंग, सखि ! कोमल कनक कठोर॥ १ ॥
 सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइ।
 निसि मलीन वह निसि दिन यह बिगसाइ॥ २ ॥
 सिय तुव अंग-रंग मिलि अधिक उदोत।
 हार बेलि पहिरावौ चम्पक होत॥ ३ ॥
 बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाइ।
 ए आँखियाँ दोइ बैरिनि देहिं बुझाइ॥ ४ ॥
 अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।
 कनगुरिया कै मुँदरी कंकन होइ॥ ५ ॥
 संकट सोचबिमोचन मंगलगेह।
 तुलसी राम नाम पर करिय सनेह॥ ६ ॥
 तप, तीरथ, मख, दान, नेम, उपवास।
 सब तैं अधिक राम जपु तुलसीदास॥ ७ ॥
 केहि गिनती महुँ ? गिनती जस बन घास।
 राम जपत भये तुलसी तुलसीदास॥ ८ ॥
 कामधेनु हरिनाम, कामतरु राम।
 तुलसी सुलभ चारिफल सुभिरत नाम॥ ९ ॥
 तुलसी कहत सुनत सब समुझत कोय।
 बड़े भाग अनुराग राम सन होय॥ १० ॥

कवितावली

तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरै।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छवि भूरि अनंग की दूरि धरै॥
दमकै दतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किलकै कल बाल-विनोद करै।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी-मन-मन्दिर में बिहरै॥ १ ॥

रानी में जानी अजानी महा, पवि पाहन हू ते कठोर हियो है।
राजहु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तिय को जिन कान कियो है॥
ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ?।
आँखिन में, सखि! राखिबे जोग, इन्हें किमि कै बनबास दियो है?॥ २ ॥

सुनि सुन्दर बैन सुधारस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हें समुझाइ कछु मुसुकाइ चली॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सब अवलोकति लोचन-लाहु अली।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली॥ ३ ॥

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानौं,
लंक लीलबे को काल रसना पसारी है।
कैधौ ब्योमबीधिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सी उधारी है॥
तुलसी सुरेस चाप, कैधौं दामिनी कलाप,
कैधौं चली मेरु ते कृसानु-सरि भारी है।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं,
कानन उजार्यौ अब नगर प्रजारी है॥ ४ ॥

सियराम-सरूप अगाध अनूप बिलोचन-मीनन को जलु है।
 मुति राम कथा, मुख राम को नामु, हिए पुनि रामहि को थलु है॥
 मति रामहिं सों, गति रामहिं सों, रति राम सों, रामहिं को बलु है।
 सबकी न कहै तुलसी के मते इतनो जग जीवन को फलु है॥ ५॥

‘झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जग’ संत कहंत जे अंत लहा है।
 ताको सहै सठ संकट कोटिक काढ़त दंत करंत हहा है॥
 जानपनी को गुमान बड़ो तुलसी के बिचार गँवार महा है।
 जानकीजीवन जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यो कहा है॥ ६॥

को भरिहै हरि के रितए, रितवै पुनि को हरि जो भरिहै।
 उथपै तेहि को जेहि राम थपै ? थपिहै तेहि को हरि जो ढरिहै?॥
 तुलसी यह जानि हिए अपने सपने नहिं कालहु ते डरिहै।
 कुमया कछु हानि न औरन की जो पै जानकीनाथ मया करिहै॥ ७॥

नाम अजामिल से खल तारन तारन बारन बार-बधू को।
 नाम हरे प्रह्लाद बिषाद, पिता भय साँसति सागर सूको॥
 नाम सो प्रीति प्रतीति बिहीन गिल्यो कलिकाल कराल न चूको।
 राखिहै राम सो जासु हिये तुलसी हुलसै बल आखर दू को॥ ८॥

भौंह कमान संधान सुठान जे नारि-बिलोकनि-बान तें बाँचे।
 कोप-कृसानु गुमान अवाँ घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे॥
 लोभ सबै नट के बस ह्रवै कपि ज्यों जग में बहु नाच न नाचे।
 नीके हैं साधु सबै तुलसी, पै तेई रघुबीर के सेवक साँचे॥ ९॥

काढ़ि कृपान, कृपा न कहूँ, पितु काल कराल बिलोकि न भागे ।
 'राम कहाँ', 'सब ठाउँ है' 'खंभ में' ?, 'हाँ' सुनि हँक नृकेहरि जागे ॥
 बैरी बिदारि भये बिकराल, कहे प्रह्लादहि के अनुरागे ।
 प्रीति प्रतीति बड़ी तुलसी, तब ते सब पाहन पूजन लागे ॥ १० ॥

अन्तर्जामिहु ते बड़ बाहिरजामि हैं राम, जे नाम लिए तें ।
 धावत धेनु पन्हाइ लवाइ ज्यों बालक बोलनि कान किए तें ॥
 आपनि बूझि कहै तुलसी, कहिबे की न बावरि बात किए तें ।
 पैज परे प्रह्लादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें, न हिए तें ॥ ११ ॥

गीतावली

रहहु भवन हमरे कहे, कामिनि !
 सादर सासु चरन सेवहु नित जो तुम्हरे अति हित गृह-स्वामिनि ॥
 राजकुमारि कठिन कंटक मग, क्यों चलिहौ मृदु पद गजगामिनि ।
 दुसह बात, बरषा, हिम, आतप कैसे सहिहौ अगनित दिन जामिनि ? ॥
 हौं पुनि पितु-आज्ञा प्रमान करि ऐहौ बेगि सुनहु दुति-दामिनि ।
 तुलसीदास प्रभु-बिरह-बचन सुनि सहि न सकी मुरछित भइ भामिनि ॥ १ ॥

जो पै हौं मातु मते महँ हूँवैहैं ।
 तौ जननी ! जग में या मुख की कहाँ कालिमा धूँवैहैं ? ॥
 क्यों हौं आजु होति सुचि सपथनि ? कौन मानिहै साँची ? ।
 महिमा-मृगी कौन सुकृती की खल-बच-बिसिखन बाँची ? ॥
 गहि न जाति रसना काहू की, कहौ जाइ जोइ सूझै ।
 दीनबंधु कारुन्य सिंधु बिनु कौन हिए की बूझै ? ॥
 तुलसी रामबियोग-बिषम-बिष विकल नारि नर भारी ।
 भरत-सनेह-सुधा सींचे सब भए तेहि समय सुखारी ॥ २ ॥

अतिहि अधिक दरसन की आरति।

राम-वियोग असोक-बिटप तर सीय निमेष कलप सम टारति॥

बार बार बर बारिजलोचन भरि भरि बरत बारि उर ढारति।

मनहुँ बिरह के सद्य घाव हिये लखि तकि तकि थरि धीरज तारति॥

तुलसिदास जद्यपि निसि बासर छिन छिन प्रभु मूरतिहि निहारति।

मिटति न दुसह ताप तउ तनु की, यह बिचारि अन्तर्गति हारति॥ ३ ॥

पद पदुम गरीब निवाज के।

देखिहौं जाइ पाइ लोचन फल हित सुर-साधु-समाज के॥

गई बहोर ओर निरबाहक, साजक बिगरे साज के।

सबरी सुखद, गीध गतिदायक, समनसोक कपिराज के॥

नाहिंन मोहिं और कतहुँ कछु जैसे काग जहाज के।

आयो सरन सुखद पद पंकज चोंथे रावन बाज के॥

आरतिहरन सरन समरथ सब दिन अपने की लाज के।

तुलसी पाहि कहत नत-पालक मोहुँ से निपट निकाज के॥ ४॥

मेरो सब पुरुषारथ थाको।

बिपति बैटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको ?॥

सुनु सुग्रीव साँदेहू मोपर फेरयो बदन बिधाता।

ऐसे समय समर-संकट हौं तज्यो लखन सो भ्राता॥

गिरि कानन जैहैं साखामृग, हौं पुनि अनुज सँघाती।

हैहै कहां बिभीषन की गति, रही सोच भरि छाती॥

तुलसी सुनि प्रभु-बचन भालु-कपि सकल बिकल हिय हारे।

जामवंत हनुमंत बोलि तब औसर जानि प्रचारे॥ ५॥

विनयपत्रिका

ऐसी मूढ़ता या मन की।

परिहरि राम भगति-सुरसरिता आस करत ओसकन की॥

धूमसमूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।

नहिँ तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होति लोचन की॥

ज्यों गच-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की।

टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की॥

कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति मन की।

तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की॥ १॥

अब लौं नसानी अब न नसैहौं।

राम कृपा भवनिसा सिरानी जागे फिर न डसैहौं॥

पायो नाम चारु चिंतामनि, उर-कर तें न खसैहौं।

स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चितं कंचनहिं कसैहौं॥

परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज बस है न हँसैहौं।

मन-मधुकर पन करि तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं॥ २॥

ऐसो को उदार जग माँहीं ?

बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं॥

जो गति जोग बिराग जतन करि नहिं पावत मुनि ज्ञानी।

सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानी॥

जो सम्पति दससीस अरपि करि रावन सिव पहुँ लीन्हौं।

सो सम्पदा बिभीषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्हौं॥

तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।

तौ भजु राम काम सब पूरन करै कृपानिधि तेरो॥ ३॥

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।

श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा तैं संत सुभाव गहौंगो॥

जथालाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो।

परहित-निरत निरंतर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो॥

परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।

बिगत मान, सम सीतल मन, पर गुन, नहिँ दोष गहौंगो॥

परिहरि देहजनित चिंता, दुख सुख समबुद्धि सहौंगो।

तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अविचल हरिभक्ति लहौंगो॥ ४॥

मन पछितैहै अवसर बीते।

दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम बचन अरु ही ते॥

सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बली ते।

हम हम करि धन धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते॥

सुत, बनितादि जानि स्वारथ-रत न करु नेह सबही तैं।

अंतहुँ तोहिँ तजैगे, पामर ! तू न तजै अबही तैं॥

अब नाथहिँ अनुरागु जागु जड़, त्यागु दुरासा जी तैं।

बुझै न काम-अग्नि तुलसी कहूँ बिषय-भोग बहु घी तैं॥ ५॥



बिहारी

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाई परैं स्यामु हरित-दुति होइ॥ १॥

नीकी दर्ई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।
तज्यौ मनौ तारन-बिरदु, बारक बारनु तारि॥ २॥

जोग-जुगति सिखए सबै मनौ महामुनि मैन।
चाहत पिय-अद्वैतता काननु सेवत नैन॥ ३॥

तो पर वारौं उरबसी, सुनि, राधिके सुजान।
तू मोहन कै उर बसी ह्वै उरबसी-समान॥ ४॥

खेलन सिखए, अलि, भलैं, चतुर अहेरी मार।
कानन-चारी नैन-मृग, नागर नरनु सिकार॥ ५॥

रससिँगार-मंजनु किए, कंजनु भंजनु दैन।
अंजनु रंजनु हूँ बिना खंजुन गंजनु, नैन॥ ६॥

कागद पर लिखत न बनत, कहत सँदेसु लजात।
कहिहै सबु तेरो हियौ मेरे हिय की बात॥ ७॥

बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनानु तैं, हरि, नीके ए नैन॥ ८॥

थोरैं ही गुन रीझते, बिसराई वह बानि।
तुमहूँ कान्ह, मनौ भए आजकाल्हि के दानि॥ ९॥

कब कौ टेरतु दीन रट, होत न स्याम सहाइ।
तुमहूँ लागी जगत-गुरु, जग-नाइक, जग-बाइ॥ १०॥

पत्रा हीं तिथि पाइयै वा घर कै चहुँ पास।
नितप्रति पूनयौई रहै आनन-ओप-उजास॥ ११॥

कंज-नयनि मंजनु किए, बैठी ब्यौरति बार।
कच-अँगुरी-बिच दीठि दै, चितवति नंदकुमार॥ १२॥

तंत्री-नाद, कबित्त-रस, सरस राग, रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े, तरे जे बूड़े सब अंग॥ १३॥

केसरि कै सरि क्यों सकै, चंपकु कितकु अनूपु।
गात-रूप लखि जातु दुरि जातरूप कौ रूपु॥ १४॥

नैक न जानी परति, यों पर्यौ बिरह तनु छामु।
उठति दियै लौं नौंदि, हरि, लियै तिहारौ नामु॥ १५॥

सोवत सपनैँ स्यामघनु मिलिहिलि हरत बियोगु।
तब हीं तरि कित हूँ गई, नींदौ नींदनु जोग॥ १६॥

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यों ज्यों बूड़ै स्याम रँग, त्यों त्यों उज्जलु होइ॥ १७॥

आवत जात न जानियतु, तेजहिं तजि सियरानु।
घरहँ जँवाई लौं घट्यौ खरौ पूस-दिन-मानु॥ १८॥

जहाँ जहाँ ठाढ़ौ लख्यौ स्यामु सुभग-सिरमौरु।
बिन हूँ उन छिनु गहि रहतु दृगनु अजौ वह ठौरु॥ १९॥

बड़े न हूजै गुननु बिनु बिरद-बड़ाई पाइ।
कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ्यौ न जाइ॥ २०॥

तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुरागु ।
 जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज-मग पग-पग होतु प्रयागु ॥ २१ ॥
 कीजै चित सोई, तरे जिहिं पतितनु के साथ ।
 मेरे गुन-औगुन-गननु गनौ न, गोपीनाथ ॥ २२ ॥
 हौं हीं बौरी बिरह-बस, कै बौरी सनु गाउँ ।
 कहा जानि ए कहत हैं ससिहिं सीतकर-नाउँ ॥ २३ ॥
 संगति सुमति न पावहीं परे कुमति कै धंध ।
 राखौ मेलि कपूर मैं, हींग न होइ सुगंध ॥ २४ ॥
 तन भूषन, अंजन दृगनु, पगनु महावर-रंग ।
 नहिं सोभा कौं साजियतु, कहिबैं हीं कौं अंग ॥ २५ ॥
 गिरि तें ऊँचे रसिक-मन बूड़े जहाँ हंजारु ।
 वहै सदा पसु-नरनु कौं प्रेम-पयोधि पगारु ॥ २६ ॥
 जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार ।
 अब, अलि रही गुलाब मैं अपत, कँटीली डार ॥ २७ ॥
 स्वारथु, सुकृत न, श्रमु बृथा; देखि, बिहंग, बिचारि ।
 बाज, पराएँ पानि परि तूँ पच्छीनु न मारि ॥ २८ ॥
 सीस, मुकुट, कटि-काछनी, कर-मुरली, उर-माल ।
 इहिं बानक मो मन सदा बसौ, बिहारी लाल ॥ २९ ॥
 संगति-दोषु लगै सबनु, कहै ति साँचे बैन ।
 कुटिल-बंक-भुव-संग भए कुटिल, बंक-गति नैन ॥ ३० ॥
 कहत सबै, बेदी दियैं आँकु दसगुनौ होतु ।
 तिय-लिलार बेदी दियैं अगिनितु बढतु उदोतु ॥ ३१ ॥

पहिरि न भूषन कनक के, कहि आवत इहिं हेत ।
दरपन के से मोरचे, देह दिखाई देत ॥ ३२ ॥

लिखन बैठि जाकी सबी, गहि गहि गरब गरूर ।
भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर ॥ ३३ ॥

दृग उरझत, दूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति ।
परति गाँठि दुरजन-हियै, दर्ई, नई यह रीति ॥ ३४ ॥

भजन कह्यौ, तातैं भज्यौ; भज्यौ न एकौ बार ।
दूरि भजन जातैं कह्यौ, सो तैं भज्यौ, गँवार ॥ ३५ ॥

बसै बुराई जासु तन, ताही कौ सनमानु ।
भलौ भलौ कहि छोड़ियै, खोटैं ग्रह जपु, दानु ॥ ३६ ॥

मानहु बिधि तन-अच्छछवि स्वच्छ राखिबैं काज ।
दृग-पग-पोंछन कौं करे भूषन पायंदाज ॥ ३७ ॥

करौ कुबत जगु, कुटिलता तजौं न, दीनदयाल ।
दुखी होहुगे सरल हिय बसत, त्रिभंगीलाल ॥ ३८ ॥

कहै यहै श्रुति सुम्रत्यौ, यहै सयाने लोग ।
तीन दबावत निसकहीं पातक, राजा, रोग ॥ ३९ ॥

समै समै सुन्दर सबै, रूपु कुरूप न कोइ ।
मन की रुचि जेती जितै, तिल तेती रुचि होइ ॥ ४० ॥

दिन दस आदरु पाइ कै करि लै आपु बखानु ।
जौ लगि काग ! सराधपखु, तौ लगि तौ सनमानु ॥ ४१ ॥

बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
 सौंह करै भौहनु हँसै, दैन कहैं नटि जाइ॥ ४२॥
 अरुनसरोरुह-कर-चरन, दृग-खंजन, मुख-चंद।
 समै आइ सुंदरि सरद काहि न करति अनंद॥ ४३॥
 कहलाने एकत बसत अहि मयूर, मृग बाघ।
 जगनु तपोवन सौं कियौ दीरघ-दाघ निदाघ॥ ४४॥
 छिप्यौ छबीलौ मुँहु लसै नीलैं अंचर-चीर।
 मनौ कलानिधि झलमलै कालिंदी कै नीर॥ ४५॥
 अनियारे, दीरघ दृगनु किती न तरुनि समान।
 वह चितवनि औरै कछू, जिहिं बस होत सुजान॥ ४६॥
 सटपटाति सैं ससिमुखी मुख घूँघट-पटु ढाँकि।
 पावक-झर सी झमकि कै गई झरोखा झाँकि॥ ४७॥
 सघनकुंज-छाया सुखद सीतल सुरभि-समीर।
 मनु ह्रवै जात अजौं वहै उहि जमुना के तीर॥ ४८॥
 सोहत ओढैं पीतु पटु स्याम, सलौनैं गात।
 मनौ नीलमनि-सैल पर आतपु पर्यौ प्रभात॥ ४९॥
 बरन, बास, सुकुमारता, सब बिधि रही समाइ।
 पँखुरी लगी गुलाब की गात न जानी जाइ॥ ५०॥

भूषण

पावक-तूल अभिन्न के भयौ मित्रन के भयौ धाम सुधा के।
 आनंद भौ बहुरौ पहिलैं कुमुदावलि चक्कनि के असु थाके।
 तेगहीं त्याग-बली सिवराज भौ भूषन भाषत बंधु सुधा के।
 बंदन तेज औ चंदन कीरति साजे सिंगार बधू बसुधा के॥ १॥

चंदन में नाग मदभर्यौ इंद्र-नाग
 बिषधर्यौ सेषनाग कहै उपमा अबस कौ।
 चौर थहरात न कपूर ठहरात मेघ
 सरद उड़ात बात लागें दिस दस कौ।
 संभु नीलग्रीव और पुड़रीक ही बसनि
 सरजा सिवाजी बोल भूषन सरस कौ।
 छीरधि में पंक कलानिधि में कलंक
 यातें रूप एक टंक ये लहैं न तेरे जस कौ॥ २॥

चमकति चपला न फेरत फिरंगें भट
 इंद्र की न चाप रूप बैरख समाज कौ।
 धाए धुरवा न छाए धूरि के पटल मेघ
 गजिबौ न साजिबौ है दुंदुभी-अवाज कौ।
 भवैसिला के डरन डरानी रिपुरानी कहैं
 पिय भजौ देखि उदौ पावस की साज कौ।
 घन की घटा न गजघटनि सनाह साज
 भूषन भनत आयौ सैन सिवराज कौ॥ ३॥

कामिनी कंत सों जामिनि चंद सों दामिनि पावस -मेघ-घटा सों ।
 कीरति दान सों सूरति ज्ञान सों प्रीति बढी सनमान महा सों ।
 भूषन भूषन सों तन ही नलिनी नव-पूषनदेव-प्रभा सों ।
 जाहिर चारिहुँ ओर जहान लसै हिंदुआन खुमान सिवा सों ॥ ४ ॥

देत तुरीगन गीत सुने बिन देत करीगन गीत सुनाएँ ।
 भूषन भावत भूप न आन जहान खुमान की कीरति गाएँ ।
 देत घने नृप मंगन कौ पै निहाल करै सिवराज रिझाएँ ।
 आन रिताँ सरसैं बरसैं पै बढें नदियाँ नद पावस आएँ ॥ ५ ॥

पूरब के उत्तर के प्रबल पछाँहहू के
 सब पातसाहन के गढ़-कोट हरते ।
 भूषन कहैं यौ अवरंग सों उजीर जीति
 लेबे कौ पुरतगाल सागर उतरते ।
 सरजा सिवा पर पठावत मुहीम-काज
 हजरत हम मरिबे कौ नाहिं डरते ।
 चाकर ह्वै उजर कियौ न जाय नेक पै
 कछू दिन उबरते तौ घने काम करते ॥ ६ ॥

साहितनै सरजा की कीरति सों चारो ओर
 चाँदनी बितान छिति-छोर छाड्यतु है ।
 भूषन भनत ऐसो भूमिपति भवैसिला है
 जाके द्वार भिच्छुक सदा ही भाड्यतु है ।
 महादानी सिवाजू खुमान या जहान पर
 दान के बखान जाके यौ गनाड्यतु है ।
 रजत की हौंस किये हेम पाड्यतु जासों
 हयन की हौंस किये हाथी पाड्यतु है ॥ ७ ॥

तो कर सों छिति छाजत दानहि दानहु सों अति तो कर छाजै ।
 तूँ ही गुनी की बड़ाई सजै अरु तेरी बड़ाई गुनी सब साजै ।
 भूषन तोहि सों राज बिराजत राज सों तूँ सिवराज बिराजै ।
 तो बल सों गढ़-कोट हैं गाजत तूँ गढ़-कोटनि के बल गाजै ॥ ८ ॥

ब्रह्म रचै पुरुषोत्तम पोषत संकर सृष्टि-सँहारनहारे ।
 तू हरि को अवतार सिवा नृप-काज सँवारे सबै हरिवारे ।
 भूषन यों अवनी जवनी कहैं कोउ कहै सरजा सों हहा रे ।
 तूँ सबको प्रतिपालनहार बिचारे भतार न मार हमारे ॥ ९ ॥

आदि बड़ी रचना है बिरंचि की जामें रह्यो रचि जीव जड़ो है ।
 ता रचना महिं जीव बड़ो अति काहे तैं ता उर ज्ञान गड़ो है ।
 जीवन में नर लोक बड़ो कबि भूषन भाषत पैज अड़ो है ।
 है नर लोक में राज बड़ो सब राजन में सिवराज बड़ो है ॥ १० ॥

अति मतवारे जहाँ दुरदै निहारे जहाँ
 तुरगन ही में चंचलाई-परकीति है ।
 भूषन कहत जहाँ पर लगैं बानन को
 कोक पच्छिनहिं माहिं बिछुरन-रीति है ।
 गुनि गन चोर जहाँ एक चित्त ही के लोग
 बाँधे जहाँ एक सरजा की गुन-प्रीति है ।
 कंफ कदली में बैर बृच्छ बदरी में सिव-
 राज अदली के राज में यों राजनीति है ॥ ११ ॥

साहितनै सरजा समरथ्य करी करनी धरनी पर नीकी ।
 भूलिगे भोज-से बिक्रम-से औ भई बलि-बेनु की कीरति फीकी ।
 भूषन भिच्छुक भूप भए भलि भीख लै केवल भैसिला ही की ।
 नेक की रीझि धनेस करै लखि ऐसियै रीति सदा सिवजीकी ॥ १२ ॥

ब्रह्म के आनन तैं निकसे तैं अत्यन्त पुनीत तिहूँ पुर मानी ।
 राम जुधिद्विठर के बरने बलमीकिहु ब्यास के संग सुहानी ।
 बिक्रम भोजहु के गुन गाय कै भूषन पावनता जग जानी ।
 पुन्य पवित्र सिवा सरजै बरम्हाय पवित्र भई बर बानी ॥ १३ ॥

इंद्र निज हेरत फिरत गजइंद्र अरु
 इन्द्र को अनुज हेरै दुगधनदीस कों ।
 भूषन भनत सुरसरिता कों हंस हेरै
 बिधि हेरै हंस कों चकोर रजनीस कों ।
 साहितनै सरजा यों करनी करी है तैं वै
 होतु है अचंभो देव कोटियौ तैंतीस कों ।
 पावत न हैरैं तेरे जस में हिराने निज
 गिरि कों गिरीस हेरै गिरजा गिरीस कों ॥ १४ ॥

एक कहैं कलपद्रुम है इमि पूरत है सबकी चितचाहै ।
 एक कहैं अवतार मनोज को यों तन में अति सुन्दरता है ।
 भूषन एक कहैं महिइंदु यों राज बिराजत बाढ्यौ महा है ।
 एक कहैं नर सिंह है संगर एक कहैं नरसिंह सिवा है ॥ १५ ॥

सुंदरता गुरुता प्रभुता भनि भूषन होतं है आदर जामें ।
 सज्जनता औ दयालुता दीनता कोमलता झलकै परजा में ।
 दान कृपानहु को करिबो करिबो अभै दीनन को बर जामें ।
 साहस सौं रनटेक बिबेक इते गुन एक सिवा सरजा में ॥ १६ ॥

बाने फहराने घहराने घंटा गजन के
 नाहीं ठहराने रावराने देसदेस के ।
 नग भहराने ग्राम नगर पराने सुनि
 बाजत निसाने सिबराजजू नरेस के ।
 हाथिन के हौदा उकसाने कुंभ कुंजर के
 भौन को भजाने अलि छूटे लट केस के ।
 दल के दरारन तें कमठ करारे फूटे,
 केरा के से पात बिहराने फन सेस के ॥ १७ ॥

राखी हिंदुवानी हिंदुवान को तिलक राख्यो
 अस्मृति पुरान राखे बेद बिधि सुनी मैं ।
 राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की
 धरा मैं धरम राख्यौ गुन राख्यौ गुनी मैं ।
 भूषन सुकबि जीति हृद्द मरहट्ठन की
 देस-देस कीरति बखानी तव सुनी मैं ।
 साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी
 दिल्ली-दल दाबि कै दिवाल राखी दुनी मैं ॥ १८ ॥

बन उपवन फूले अंबनि के झीर झूले
 अवनि सोहात सोभा और सरसाई है।
 अलि मदमत्त भए केतकी वसंती फूली
 भूषन बखानै सोभा सबै सुखदाई है।
 विषम बिडारिबे कों बहत समीर मंद
 कोकिला की कूक कान कानन सुनाई है।
 इतनो सँदेसो है जू पथिक तिहारे हाथ
 कहो जाय कंत सों वसंतरितु आई है ॥ १६ ॥

कारो जल जमुना को काल सो लगत आली
 छाड़ रह्यौ मानो यह बिष काली नाग को।
 बैरनि भई है कारी कोयल निगोड़ी यह
 तैसो ही भँवर कारो बासी बन बाग को।
 भूषन भनत कारे कान्ह को बियोग हिये
 सबै दुखदायी जो करैया अनुराग को।
 कारो घन घेरि घेरि मार्यौ अब चाहत है
 एते पर करति भरोसो कारे काग को ॥ २० ॥

घनानन्द

झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छकै दृग राजत काननि छवै ।
 हैंसि बोलन मैं छबि फूलन की बरषा, उर ऊपर जाति है हवै ।
 लट लोल कपोल कलोल करै, कलकंठ बनी जलजावलि द्रवै ।
 अंग अंग तरंग उठै दुति की, परिहै मनौ रूप अबै धर चवै ॥ १ ॥

भोर ते साँझ लौं कानन ओर निहारति बावरी नेकु न हारति ।
 साँझ ते भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सों इकतार न टारति ।
 जो कहूँ भावतो दीठि परै घनआनंद आँसुनि औसर गारति ।
 मोहन-सोहन जोहन की लगियै रहै आँखिन के उर आरति ॥ २ ॥

हीन भएँ जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समानै ।
 नीर सनेही को लाय कलंक निरास हवै कायर त्यागत प्रानै ।
 प्रीति की रीति सु क्यों समुझै जड़ मीत के पानि परे कों प्रमानै ।
 या मन की जु दसा घनआनंद जीव की जीवनि जान ही जानै ॥ ३ ॥

तब तो छबि पीवत जीवत हे, अब सोचन लोचन जात जरे ।
 हित पोष के तोष सु प्रान पले, बिललात महा दुख दोष भरे ।
 घनआनंद मीत सुजान बिना सब ही सुख साज-समाज टरे ।
 तब हार पहार से लागत हे अब आनि कै बीच पहार परे ॥ ४ ॥

रावरे रूप की रीति अनूप, नयो-नयो लागत ज्यों-ज्यों निहारियै ।
 त्यों इन आँखिन बानि अनोखी, अघानि कहूँ नहि आनि तिहारियै ।

एक ही जीव हुतौ सु तौ वारुयो सुजान सँकोच और सोच सहारियै।
रोकी रहै न, दहै घनआनंद बावरी रीझ के हाथन हारियै॥ ५॥

घनआनंद जीवनमूल सुजान की कौंधनहूँ न कहूँ दरसैं।
सु न जानिये धौं कित छाय रहे दृग चातिग प्रान तपे तरसैं।
बिन पावस तौं इन थ्यावस हो न सु क्यों करि ये अब सो परसैं।
बदरा बरसै रितु मैं धिरिकै नितही आँखियाँ उघरी बरसैं॥ ६॥

अन्तर आँच उसास तचै अति अङ्ग उसीजै उदेग की आवस।
ज्यौं कहलाय मसोसनि ऊमस क्यों हूँ कहूँ सु धरै नहिं थ्यावस।
नैनउ धारि दिये बरसैं घनआनंद छाई अनोखिये पावस।
जीवन-मूरति जान को आनन है बिन हेरें सदाई अमावस॥ ७॥

लै ही रहे हो सदा मन और को दैबो न जानत जान दुलारे।
देख्यौ न है सपनेहूँ कहूँ दुख, त्यागे सँकोच औ सोच सुखारे।
कैसो सँयोग बियोग धौं आहि फिरौ घनआनंद ह्वै मतवारे।
मो गति बूझि परै तबही जब होहु घरीकहूँ आप ते न्यारे॥ ८॥

चातिक चुहल चहुँ ओर चाहै स्वाति ही को,
सूरे पनपूरे जिन्हें बिष सम अमी है।
प्रफुलित होत भान के उदोत कंजपुञ्ज,
ता बिन बिचारनि हीं जोति-जाल तमी है।
चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै अनन्दघन,
प्रीतिरीति बिषम सु रोम रोम रमी है।
मोहिं तुम एक तुम्हैं मो सम अनेक आहिं,
कहा कछु चन्दहि चकोरन की कमी है॥ ९॥

पाती-मधि छाती-छत लिखि न लिखाए जाहिं,
 काती लै बिरह घाती कीने जैसे हाल हैं ।
 आँगुरी बहकि तहीं पाँगुरी किलकि होति,
 ताती राती दसनि के जाल ज्वाल-माल हैं ।
 जान प्यारे जौब कहूँ दीजिए सँदेसो तौब,
 आँवाँ सम कीजियै जु कान तिहि काल हैं ।
 नेह भीजी बातैं रसना पै उर-आँच लागैं,
 जागैं घनआनंद ज्यों पुंजनि मसाल हैं ॥ १० ॥

कंत रमैं उर अन्तर मैं सु लहै नहीं क्यों सुखरासि निरन्तर ।
 दंत रहैं गहैं आँगुरी ते जु बियोग के तेह तचे परतंतर ।
 जो दुख देखति हौं घनआनंद रैन-दिना बिन जान सुतंतर ।
 जानैं वेई दिन-राति, बखाने तैं जाय परै दिन राति को अंतर ॥ ११ ॥

बधिकौ सुधि लेत सुन्यौ हति कै गति रावरी क्योंहूँ न बूझि परै ।
 मति आवरी बावरी हूवै जकि जाय उपाय कहूँ किन सूझि परै ।
 घनआनंद यौ अपनाय तजी इन सोचनि ही मन मूझि परै ।
 दिनरैन सुजान बियोग के बान सहै जिय पापी न जूझि परै ॥ १२ ॥

ए रे बीर पौन, तेरो सबै ओर गौन, बीरी
 तो सो और कौन मनै ढरकौहीं बानि दै ।
 जगत के प्रान ओछे बड़े सो समान घन-
 आनंद-निधान सुखदान दुखियानि दै ।
 जान उजियारे गुन-भारे अंत मोही प्यारे,
 अब हूवै अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै ।
 बिरह-बिथाहि मूरि आँखिन मैं राखौं पूरि
 धूरि तिन पायन की हाहा ! नेकु आनि दै ॥ १३ ॥

सोंधे की बास उसासहि रोकति चन्दन दाहक गाहक जी को ।
 नैनन बैरी सो है री गुलाल अबीर उड़ावत धीरज ही को ।
 राग बिराग थमार त्यों धार सी लौटि पर्यौ ढँग यों सबहीं को ।
 रंग रचावन जान बिना घनआनंद लागत फागुन फीको ॥ १४ ॥

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं ।
 तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ झझकैं कपटी जे निसाँक नहीं ।
 घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ यहाँ एक तें दूसरो आँक नहीं ।
 तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो कहौ मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ॥ १५ ॥

कारी कूर कोकिला कहाँ को बैर काढ़ति री,
 कूकि-कूकि अब ही करेजो किन कोरि लै ।
 पैड़ें परे पापी ये कलापी निस द्यौस ज्यों ही,
 चातक घातक त्यों ही तूहू कान फोरि लै ।
 आनंद के घन प्रान-जीवन सुजान बिना,
 जानि कै अकेली सब घेरौ दल जोरि लै ।
 जौ लौं करैं आवन बिनोद-बरसावन वे,
 तौ लौं रे डरारे बजमारे घन घोरि लै ॥ १६ ॥

बैरी बियोग की हूकनि जारत कूकि उठै अचक़ँ अधरातक ।
 बेयत प्रान बिना ही कमान सु बान से बोल सों कन ह्वै घातक ।
 सोचनि ही पचियै बचियै कित डोलत मो तन लाएँ महा तक ।
 वे घनआनंद जाय छए उत पैड़ै पर्यो इत पातकी चातक ॥ १७ ॥

कित को ढरिगौ वह ढार अहो जिहि मो तन आँखिन ढोरत हे।
 अरसानि गही उहि बानि कछू सरसानि सों आनि निहोरत हे।
 घनआनंद प्यारे सुजान सुनौ तब यों सब भौतिन भोरत हे।
 मन माहिं जौ तोरन ही तौ कह्यै बिसवासी सनेह क्यों जोरत हे॥ १८॥

पूरन प्रेम को मंत्र महा पन जा मधि सोधि सुधारि है लेख्यौ।
 ताही के चारु चरित्र बिचित्रनि यों पचिकै रचि राखि बिसेख्यौ।
 ऐसो हियो हितपत्र पवित्र जु आन-कथा न कहूँ अवरेख्यौ।
 सो घनआनंद जान अजान लौं टूक कियौ पर बाँचि न देख्यौ॥ १९॥

पर-काजहि देह को धारि फिरौ, परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
 निधि-नीर सुधा के समान करौ, सबही बिधि सज्जनता सरसौ।
 घनआनंद जीवन दायक हौ, कछू मेरियौ पीर हियें परसौ।
 कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन, मो असुवानहिं लै बरसौ॥ २०॥

कान्ह परे बहुतायत मै, अकलैन की बेदन जानौ कहा तुम।
 हौ मनमोहन मोहे कहूँ न, बिथा बिमनैन की मानौ कहा तुम।
 बौरे बियोगिन आप सुजान ह्वै, हाय कछू उर आनौ कहा तुम।
 आरतिवंत पपीहन कों घनआनंद जू पहचानौ कहा तुम॥ २१॥

मग हेरत दीठि हिराय गयी, जब तें तुम आवनि-औधि बदी।
 बरसौ कितहूँ घनआनंद प्यारे पै बाढ़ति है इत सोच-नदी।
 हियरा अति औटि उदेग की आँचनि, च्चावत आँसुनि मै न मदी।
 कब आयहौ औसर जानि सुजान, बहीर लौं बैस तौ जाति लदी॥ २२॥

अंतर हो किधौं अंत रहौं, दृग फारि फिरौं कि अभागनि भीरौं।
 आगि जरौं अकि पानि परौं, अब कैसी करौं, हिय का बिधि धीरौं।
 जो घनआनंद ऐसी रुची, तौं कहा बस है, अहो प्राननि पीरौं।
 पाऊं कहाँ हरि हाथ तुम्हें, धरनी मैं धँसौं कि अकासहिं चीरौं॥ २३॥

स्याम घटा लपटी थिर बीज, कि सोहै अमावस-अंक उज्यारी।
 धूम के पुंज में ज्वाल की माल-सी, पै दृग-सीतलता सुखकारी।
 कै छवि छायो सिँगार निहारि, सुजान-तिया-तन-दीपति प्यारी।
 कैसी फबी घनआनंद चोपनि सों पहिरी चुनि साँवरी सारी॥ २४॥

कहियै किहि भौंति दसा सजनी, अति ताती कथा रसनाहि दहै।
 अरु जो हिय ही मथि घूँटे रहौं, तो दुखी जिय क्यों करि ताहि सहै।
 घनआनंद जान न कान करै, इत के हित की कित कोउ कहै।
 उन ऊतर-पायें लगी मिहँदी, सु कहाँ लगि धीरज हाथ रहै॥ २५॥



चूर्णिका

कबीरदास

साखी

- (१) अनंत = अपार, असीम। उपगार = उपकार। लोचन = दृष्टि।
उघाड़िया = उदघाटित किया। दिखावणहार = दिखलाने वाला।
- (२) अघट्ट = कभी न घटने वाली। बिसाहुणां = क्रय-विक्रय। बहुरि
= फिर। हट्ट = हाट, बाजार।
- (३) हाँणि-हानि। जाँणि = ज्ञान।
- (४) सीष = शिक्षा। स्वाँग = वेशभूषा। जती = यती, साधु।
- (५) हम सँ = हम से। रीझि करि = प्रसन्न होकर। प्रसंग = रहस्य की
बात। भीजि = भीग।
- (६) निरभै = निर्भय, निडर। दीवै = दीपक में अर्थात् शरीर में। बाति
= वर्तिका, प्राण। तेल = सामर्थ्य। घट्या = समाप्त या कम।
- (७) सूता = सोया हुआ। काहे = क्यों। जाका = जिसके। संग
= साथ। बीछुड़या = विलग हुआ। ताही = उसी के।
- (८) जिहि = जिस। घटि = घट में, हृदय में, शरीर में। फुनि = पुनि,
पुनः। रसना = रस लेने वाली इन्द्रिय अर्थात् जिह्वा, वाणी। षये
= नष्ट हो गए। बेकाम = व्यर्थ।
- (९) ध्याइ लै = ध्यान कर ले। मंत = मंत्र। जिनि = मत। बीसरै
= विस्मृत। छीलर = छिछला तालाब, पोखरा, तलैया।
- (१०) बिछुटी = बिछुड़ी हुई, वियोगिनी। रैणि = रात। परभाति =
प्रातःकाल।
- (११) ऊभी = खड़ी। पंथ सिरि = रास्ते के छोर पर। पंथी = पथिक।
बूझै = पूछती है। धाइ = दौड़कर।
- (१२) सताँणीं = सताने वाली, कष्टदायिनी। जरजर = शिथिल। जाँणिहै
= जानेगा।
- (१३) भुवंगम = सर्प। बौरा = पागल।

- (१४) दीवा = दीपक। बाती = वर्तिका। मेल्यूँ = डालूँ। लोही = खून।
पीव = प्रियतम।
- (१५) मैं = अहंभाव, अहंकार। हरि = ईश्वर।
- (१६) थाकि = शिथिलता, थकावट। कलस = घड़ा।
- (१७) हेरत = ढूँढ़ना। हिराइ = लुप्त हो गया। कत = कैसे, कहाँ से।
- (१८) रस्यंदूर = सिंदूर (सौभाग्य का चिह्न)। काजल = कालिमा,
विषय-वासना। रमइया = रमण करने वाला, प्रियतम। दूजा
= दूसरा। कहाँ कैसे।
- (१९) देही = शरीर। सुरंग = सुन्दर। दीछड़ियाँ = बिछुड़ने पर। काँचली
= केंचुली। भुवंग = भुजंग, सर्प।
- (२०) ढबका = धक्का, ठेस, झटका।
- (२१) गमि = गति, पहुँच।
- (२२) पापणीं = पापिनी, पाप में ले जाने वाली। फंध = फंदा, पाश। हाटि
= बाजार में। काटि = काटकर।
- (२३) आगैं कूँ = भावी जीवन। पोटली = गठरी।
- (२४) कुटकी = छोटा टुकड़ा। बँबूर = बबूल। अबराँउँ = उपवन, बाग।
छपरी = छप्पर, सामान्य झोपड़ी। साषत = शाक्त। बड़ = बड़ा।
गाउँ = गाँव।
- (२५) जोग = योग्य। हरि = प्रभु, परमात्मा। कबीर = संत कबीर। कबीर
= महान, श्रेष्ठ।
- (२६) गरबियौ = गर्व करता है। मारिसी = मारेगा।
- (२७) कुंडलि = नाभि में। घटि-घटि = प्रत्येक शरीर में। देखै नाँहि
= अनुभव नहीं कर पाते।
- (२८) नेड़ा = निकट। बँधाइ = बनवाकर। सावँण = साबुन। सुभाइ
= स्वभाव।
- (२९) आपन = अपने को। रंक = तुच्छ, दरिद्र। ब्रिष तलि = वृक्ष के
नीचे। करंक = हड्डियाँ।
- (३०) सुरझ्या = सुलझ सका। चेत्या = सावधान। सुपहला = सो
पहला, वही पहला दिन, जो स्थिति पहले दिन थी वही बाद में भी
रही अर्थात् कोई विकास नहीं हुआ।

सब्द

- (१) टाटी = टटिया, फूस का पर्दा। बलिंडा = छाजन के बीच का बेड़ा या बल्ली, बड़ेरा। छाँनि = छप्पर। भाँडों = बर्तन। बूठा = बरसा। भीनाँ = भीग गया, रससिक्त। धीनाँ = क्षीण।
- (२) बैकुंठ = स्वर्ग, आनंद का लोक। प्रमिति = सीमा। पतिअइये = प्रतीति करना, विश्वास करना।
- (३) पाँडे = पंडित। कुमति = दुर्बुद्धि। खर = गधा। भारा = बोझ। छारा = धूल। घटि = हृदय में। ल्यौ = प्रगाढ़ प्रेम।
- (४) बाद = वाक्य ज्ञान, तर्क। बदंते = कहते हैं। पाँड = खाँड़। दाझें = दग्ध होना। त्रिषा = तृषा, प्यास। भूष = क्षुधा। सुवा = तोता। बहुरि = फिर। सुरतै = स्मृति। हासी = उपहास। जमपुरि = यमलोक में। जासी = जाएगा।
- (५) साकत = शाक्त। जियावनहारा = अमरत्व प्रदान करने वाला, प्रभु।
- (६) तारि = भवसागर से पार करके। पसाव = प्रसाद, कृपा। तारण = उद्धार होने की बात। तत = तत्त्व।
- (७) दोजग = नरक। खाक = मिट्टी, रज। भाँडे = बर्तन। गरबाँनाँ = गर्व करता है। दिवाँनाँ = मस्त।
- (८) औगुण = अवगुण, विकार, बुराइयाँ। बकसहु = क्षमा करो। केते = कितने। घाता = घात, चोट। हेत = स्नेह।
- (९) उपजि = उत्पन्न। बिथा = व्यथा, कष्ट। सर = बाण। कै = या, अथवा। सो = वह। सहारी = सहता है। लाई = उत्पन्न किया। जुगति = युक्ति। चाहै = अनुरक्त। भलै सचु = सच्चा सुख।
- (१०) मृगनि = मृग, पशु। खेत = जीवन-क्षेत्र। बिडरत = भागते। बिडारे = भगाने से। काहू = किसी को। पचि = प्रयत्न करके। किरषी = कृषि। बिझुका = खेत में जन्तुओं को डराने के लिए खड़ा किया गया पुतला। आखिर दोइ = दो अक्षर— 'र' और 'म' (राम)। बरियां = बेला, अवसर।

मलिक मुहम्मद जायसी

स्तुति खंड

- (१) धनपति = धन का स्वामी। उहै = वही। चाँटा = चींटी। भुगुति = खाने के लिए। उपराहीं = ऊपर। उपाई = उत्पन्न की। जियना = जीवन, जल। ताकर = उसी का। उमै = दोनों।
- (२) छाजा = सुशोभित होना। सरवरि = समानता। तिनहि = तिनके को। बड़ाई = महिमा। नास्ति = नाशवान। साजै = बनाता है। भाँजै = नष्ट करता है। सँवारै फेर = फिर से सँभाल देता है।
- (३) अलख = जो दिखलाई न दे। अबरन = रंग रहित। बर्ता = व्यवहार करना। सिरजना = रचना। बरजनहार = रोकने वाला। जिउ = जीवन।
- (४) चीन्हहु = पहचानों। गियानू = ज्ञान। महँ = में। बिसेखा = विशेष। बेहरा = बाहर, अलग। भरिपूरि = व्याप्त। दीठिवंत = ज्ञान-दृष्टि से युक्त। नीयरे = पास।
- (५) भोत्ता = अनभिज्ञ मनुष्य। बिहँसै जोगू = हँसने योग्य। कर पल्लौ = पल्लव सदृश कोमल हाथ। बर बाँहा = श्रेष्ठ भुजाएँ। जोबन = यौवन। तरुनापा = जवानी। बाजा = पड़ा है। नित = नित्य, सदैव।

मानसरोदक खंड

- (१) पून्यौ = पूर्णिमा। नहाई = स्नान करने। केत = केतकी। करना = एक श्वेत पुष्प। गुलाल = एक गहरे रंग का फूल। बकुचन =

गुच्छा, मुचकुन्द पुष्प। मौलसिर = मौलश्री। सेवती = उजला गुलाब। कूजा = सफेद जंगली गुलाब। गँधरब = गंधर्व।

(२) पाल = बाँध, किनारा। कुलेली = क्रीड़ा करती हैं। नैहर = माता-पिता का घर। सासुर = श्वसुर-गृह, ससुराल। गवनब = जाएँगी। काली = कल, शीघ्र ही। कित = कहाँ। पाली = किनारा, तट। दारुन = कठोर। दहुँ = न जाने। जनम निबाह = जीवन-निर्वाह।

(३) चाह = इच्छा। मोखू = मुक्ति, छुटकारा। डेल = बहेलिए का डला।

(४) खोंपा = जूड़ा। मुकुलाई = खोलकर। झाँपि लीन्ह = ढक लिया। ओनई = छा गई। राहाँ = राहु ने। दीठि = दृष्टि। बिमोहा = मोहित हो गया। मंकु = कदाचित्। मिस = बहाने से।

(५) बारी = बालाएँ। बेली = लताएँ। हुलसहिं = प्रसन्न हुई। केली = क्रीड़ा। करिल = काले। बिसहर = विषधर, साँप। करी = कली। कोंप = कोंपल। उनंत = झुकती हुई। उई = उदित हुई। कूई = कुमुदिनी। सरग = आकाश।

(६) मझ = बीच में। साखी = साक्षी। बाद मेलि कै = बाजी लगाकर। हारा = हार जाए। रउताई = स्वामी होने का भाव, ठकुराई। कूसल खेमा = कुशल क्षेम। फुलायल = फुलेल, सुगंधयुक्त तेल।

(७) बेकरारा = व्याकुल, अशांत। पैसारु = प्रवेश। हेराइ = ढुँढ़वाना।

(८) चाह = इच्छा। पारस रूप = रूप की पारस, जिसके स्पर्श से रूप की प्राप्ति हो। भा = हुआ। ततखन = तत्क्षण। उतिराना = तैर आया। बिगसा = विकास को प्राप्त हो गया। दसन जोति = दाँतों की चमक।

नखशिख खंड

- (१) वासुकि = शेषनाग। लुरे = लहरते हुए। अरघानी = गंध। भुअंग बैसारे = विषधर भुजंग। संकरै = शृंखला, जंजीर। फँदवार = फंदे में फँसाने वाले। अस्टौकुरी नाग = वासुकि, तक्षक, कुलक, कर्कोटक, पद्म शंखचूड़, महापद्म और धनंजय— ये नागों के प्रसिद्ध आठ कुल हैं।
- (२) उपराहीं = ऊपर। दीआ = दीपक। रुहिर = रुधिर। करवत = करवट, आरा। बेनी = (क) त्रिवेणी, (ख) वेणी। करवत लेइ = पहले मोक्ष के लिए कुछ लोग त्रिवेणी संगम पर अपना शरीर आरे से चिरवाते थे, इसी को करवट लेना कहते थे। वहाँ एक आरा इसके लिए रखा रहता था। काशी में भी ऐसा स्थान था जिसे काशी करवट कहते हैं। तपा = तपस्वी। सोहाग = (क) सौभाग्य, (ख) सोहागा। गाँग = गंगा।
- (३) ओती = उतनी। सरिवर = बराबरी। मयंकू = चन्द्रमा। पाट = आसन। अत्र = अस्त्र। दहुँ = न जाने। का कहँ = किसके लिए। संजोरु = संयोग, साज। हए = हते, मारा।
- (४) जा सहुँ = जिसको सामने से। किरसुन = कृष्ण। राघौ = राम। हुत = था। बेझ = बेझा, निशाना। अछरीं = अप्सराएँ। धानुक = धनुर्धर। ऊगै = उदित होता है।
- (५) बाँक = वक्र, सुंदर। उलथहिं = उछलते हैं। भँवा = चक्कर। माति = मतवाले होकर। चहहिं अपसवाँ = उड़कर भागना चाहते हैं। बागा = बागडोर। लेहिं नहिं बागा = लगाम का अंकुश न मानना, वश में न होना। अड़ार = राशि। जोरा = जोड़ा। सुभर = भली-भाँति भरा हुआ। काल भौर = समुद्र के बीच में काल के सामन भयंकर भँवर, काले भौरों के समान पुतलियाँ।
- (६) बरुनी = पलकों के बाल। अनी = सेना। बनावरि = वाणावलि, तीरों की पंक्ति। साखी = वृक्ष। साखी = साक्ष्य, गवाही। रन

= अरण्य। ओपहँ = उसके पास। सौजहिं तन = पशुओं के शरीर।

(७) देउँ कह जोगू = क्या जोड़ मिलाऊँ। पिअर = पीला। पँवारी = लोहारों का एक औजार जिससे लोहे में छेद करते हैं। हिरकाइ लेइ = पास सटा ले।

(८) फूल दुपहरी = बन्धूक पुष्प जो लालिमावर्णी आभा लिए हुए दोपहर में खिलता है। हीरा लेइ.....उजियारा = दाँत की श्वेत और अधरों की अरुण कान्ति के प्रसार से जगत् में उजाला होना कहकर कवि जायसी ने उषाकाल अथवा अरुणोदय का अत्यंत सुंदर एवं गूढ़ संकेत दिया है। मंजीठ = एक लकड़ी— जिसमें से गहरा लाल रंग निकलता है। अछूत = जिसका स्पर्श न किया गया हो। राता = लाल वर्ण का, अनुराग से पूर्ण। मधुकर = भ्रमर।

(९) चौक = आगे के चार दाँत। दीसी = दिखाई पड़ी। पाहन = पत्थर, हीरा। उठे झरक्कि = झलक या चमक उठे।

(१०) राता = अनुरक्त। सुर = स्वर। माति = मतवाला। घूमि के = घूमकर। अमर = अमरकोश। भासवती = शतानन्द विरचित भास्वती नामक ज्योतिष ग्रंथ। सुजनन्ह = सुजानों या चतुरों को।

(११) साँधे = साने, गूँथे। खरौरा = खाँड़ के लड्डू। घुँघुची = गुंजा। करमुँही = काले मुँह वाली। खिन = क्षण। उठै = उदित होता है। बूड़ै = छिप जाता है।

(१२) लौकहि = चमकती है। खूँट = कान का एक गहना। दुऔ खूँट = दोनों कोने। खुंभी = कान का एक आभूषण। कचपचिआ = कृतिका नक्षत्र जिसमें बहुत से तारे एक गुच्छ में दिखाई पड़ते हैं। गोहने = साथ में, सेवा में।

सूरदास

- (१) अविगत = अज्ञात, अनिर्वचनीय। गति = स्थिति। अंतरगत ही = हृदय में ही। परम स्वाद = अलौकिक आनंद। अमित तोष = अपरिमित संतोष। अगम = जहाँ जाया न जा सके। अगोचर = इन्द्रियाँ जिसका अनुभव न कर सकें। निरालंब = बिना अवलम्ब (सहारा) के।
- (२) टरिहों = भगाऊँगा, हटाऊँगा। लरिहों = लड़ाई करूँगा। निस्तरिहों = पार जाऊँगा, मुक्त होऊँगा। उघरि नच्यौ चाहत हों = लोकलाज की परवाह न करके मनमानी करना चाहता हूँ। विरद = यश, कीर्ति। बीरा = वह फूल-फल जो देव-प्रसाद रूप में भक्तों को दिया जाता है।
- (३) चोलना = चोला, लम्बा कुर्ता। रसाल = मधुर। भोयौ = रंगा हुआ, युक्त। पखावज = वाद्य विशेष, मृदंग। असंगत = बेढंगी। घट = शरीर। फेंटा = कमरबन्द। काछि = अभिनय करके, रचकर।
- (४) बिमुखनि = विरोधी। कुमति = दुर्बुद्धि। खर = गधा। अरगजा = चंदन आदि सुगंधित पदार्थ। मरकट = बंदर। भूषन = आभूषण। रीतौ = खाली। निषंग = तरकस।
- (५) सरोवर = तालाब। सनक = एक ऋषि जो ब्रह्मा के मानस पुत्र तथा विष्णु के परम भक्त के रूप में विख्यात हैं। निगम = वेद। सुबास = सुगंध। सुभग = सुंदर। छीलर = तलैया, छोटा सा ताल।
- (६) पूरि = पूर्ण करके। बीथिनि = गलियों में। मुख सहसहुँ = सहस्र मुख वाले शेषनाग भी। उर लाइ = हृदय से लगाकर। गही = ग्रहण कर लिया।

- (७) रेनु = धूलिकण। मंडित = सुशोभित। चारु = सुंदर। लोल = चंचल। गोरोचन = रोली। मधु = पराग, पुष्प रस। केहरि-नख = बघनखा। रुचिर = सुंदर। सत = सौ।
- (८) बिथकित = जो चकित या मुग्ध होकर स्तब्ध रह जाय।
- (९) घन = घने। घन = मेघ। दामिनि = आकाश-विद्युत्। भामिनि = स्त्रियाँ, गोपियाँ। पुलिन = तट। जामिनि = यामिनि, रात्रि। राग = प्रेम। अभिरामिनि = शोभा। राइ = राजा। मुदित = प्रसन्न। बिस्त्रामिनि = विश्राम देने वाली। मीन = मछली। पिक = कोयल। गनै = गिने। बिमोह्यौ = मोहित किया।
- (१०) अम्बर = आकाश। बिबरन = बिलों में। पटतर = समता।
- (११) बिकानीं = वशीभूत हो गयीं। पतियाति = विश्वास करती हैं।
- (१२) मिति = मर्यादा, सीमा। करार = कगार, किनारा। फेरिहू न चही = लौटना (फिरना) नहीं चाहतीं।
- (१३) कालिंदी = यमुना नदी। जुर = ज्वर, ताप। जारी = जली हुई। प्रजंक = पर्यंक, शय्या। तरंग = लहरें। तलफ = तड़फन। उपचार = निदान। चूर = चूर्ण। बिगलित = शिथिल, बिखरे हुए। काजल = काली। सारी = साड़ी।
- (१४) ऊरध = ऊँचा, ऊपर का। परनकुटी = पत्तों से बनी कुटी। बिबि = दो।
- (१५) उवति = उदय होती है। जुन्हैया = चन्द्रमा। मुरि मुरि = मुड़-मुड़ कर, शरीर को ऐंठ-ऐंठ कर।
- (१६) थक्यौ = रुक गया। ढरिबौ = अस्त होना। पास = बन्धन। झरिबौ = झड़ना, गिरना।

- (१७) तमचुर = मुर्गा। बलाहक = बादल। पन्नग = शेषनाग।
- (१८) अंक = अक्षर। लावति = लगाती हैं। मसि = स्याही। स्याम = काली। स्याम = कृष्ण। पाती = चिट्ठी। ताती = तप्त, गर्म। उती = उतनी। बेनु = वंशी। लाड़ = प्रेम। राती = अनुरक्त। बाल-सँघाती = बाल सखा, मित्र।
- (१९) सुधि = ध्यान। ठाले = बिना प्रयोजन। पलात = पलायन करते। घात = प्रहार। मुकुलात = आँख बन्द करते। आड़त = रोकना। मीनता = मछली का भाव, बिना जल के जीवित न रहने का भाव।
- (२०) रूँधौ = अवरुद्ध करते हो। छाँछ = मट्ठा। मूर = मूलधन। निबेरत = वसूलते हैं।
- (२१) जोग जोग = योग के योग्य। सार-जान = तत्त्वज्ञान। चीरि = फाड़कर। अपमाहीं = अपने में ही। न्यारी = अलग।
- (२२) लरिकाई = बाल्यावस्था। सौहँ = शपथ।
- (२३) पान = पानी। घनसार = कपूर। दधि-सुत = चन्द्रमा। भानु भई भुंजै = सूर्य होकर भूगती हैं। गुंजै = घुँघची।
- (२४) जोवति = देखती है। सकारे = प्रातःकाल। पनारे = अनेक प्रवाह (परनाले)।
- (२५) हंस सुता = सूर्य-पुत्री, यमुना। कगरी = किनारा। सुरभी = गायें। खरिक = गौशाला। जाहीं = जाना। सुरति = स्मरण। उमगत = तरंगित, प्रसन्न। अनगन = अगणित।

तुलसीदास

रामचरितमानस

त्रैलोका = तीन लोक (स्वर्ग, मर्त्य और पाताल)। विषमता = असमानता, वैषम्य। निरत = लीन, तत्पर।

दैहिक = शारीरिक। दैविक = देवता या भाग्य सम्बन्धी। भौतिक = जीवित प्राणियों से सम्बन्ध रखने वाला, भूत-सम्बन्धी। तापा = कष्ट, दुःख। श्रुति = वेद। चारिउ चरन धर्म = धर्म के चारों चरण (सत्य शौच, दया और दान)। अघ = पाप। पीरा = पीड़ा। विरुज = रोगरहित। अबुध = मूर्ख। निर्दम्भ = दम्भरहित। पुनी = पुण्य से युक्त, पवित्र। सचराचर = चेतन जड़ सहित। नभगेस = पक्षियों के स्वामी, गरुड़।

मेखला = करधनी, भुअन = संसार, प्रभुता वैभव, सामर्थ्य। खगेस = पक्षियों के स्वामी, गरुड़। दमसील = जितेन्द्रिय, इन्द्रियों के दमन करने वाले। फनीस = शेषनाग। झारी = समूह। जतिन्ह = संन्यासियों के।

तरु = वृक्ष। कानन = जंगल। पंचानन = सिंह। बिसराई = भुलाकर। बृंद = समूह। सुरभि पवन = सुगन्धित पवन। ससि = शस्य, खेती। बिटप = वृक्ष। मनभावतो = मनचाहा, इच्छानुसार। पय = दुग्ध। बारि = जल। अमल = स्वच्छ। मरजादा = सीमा। सरसिज = कमल। संकुल = भरा हुआ, परिपूर्ण। तड़ाग = तालाब। बिधु = चन्द्रमा। महि = पृथ्वी। मयूखन्हि = किरणों से। रबि = सूर्य। बारिद = बादल।

बाजिमेध = अश्वमेध। धुरंधर = धुरी को धारण करने वाला, अग्रगण्य, श्रेष्ठ। गुनातीत = सत्त्व, रज और तम गुणों से परे। खानि = भण्डार। परिचरजा = परिचर्या, सेवा। श्री = लक्ष्मी। रमा = लक्ष्मी। जगदम्बा = जगत की माता। संततमनिन्दिता = सदैव अनिन्दित। रति = प्रेम।

बरवै रामायण

- (१) सुबरन = सुन्दर रंग। कनक = सेना।
 (२) बिगसाइ = विकसित होता है।
 (३) हारबेलि = बेला पुष्प का हार। उदोत = प्रकाश।
 (४) उर = हृदय।
 (५) कनगुरिया = कनिष्ठिका अँगुली। मुँदरी = अँगूठी।
 (६) गेह = घर।
 (७) उपवास = व्रत।
 (८) तुलसी = तुलसी का पौधा।
 (९) कामतरु = कल्पवृक्ष।
 (१०) भाग = भाग्य। अनुराग = प्रेम।

कवितावली

- (१) दुति = शोभा। सरोरुह, कंज = कमल। लोचन = नेत्र। मंजुलताई = सुन्दरता। अनंग = कामदेव। दामिनि = बिजली। कल = सुन्दर।
 (२) अजानी = अज्ञानी। पबि = वज्र। पाहन = पत्थर।
 (३) बैन = वचन। लाहु = लाभ। अली = सखी। भानु = सूर्य।
 (४) बालधी = पूँछ। रसना = जीभ। व्योमबीथिका = आकाशगंगा। धूमकेतु = पुच्छल तारा। सुरेश-चाप = इन्द्रधनुष। कैधौ = अथवा। कलाप = समूह। कृसानु-सरि = आग की नदी। जातुधान = राक्षस।
 (५) अगाध = गम्भीर। अनूप = अनुपम। बिलोचन मीनन = आँख रूपी मछलियाँ। सुति = कान। थलु = स्थान।
 (६) हहा = विनती। जानपनी = ज्ञान सम्पन्नता, बुद्धिमानी। गँवार = मूर्ख। जान = ज्ञानी। गुमान = अभिमान।
 (७) रितये = खाली करने से। उथपै = उखाड़ना, हटाना। थपे = स्थापित करना। कुमया = कुकृपा, क्रोध। मया = कृपा।
 (८) तारन = तरने वाले, उद्धार करने वाले। बारन = हाथी। बार-बधू = वेश्या। बिषाद = दुःख। सांसति = कष्ट। सूको = सूख गया। गिल्यो = निगल गया। आखर दू = दो अक्षर (राम नाम)।
 (९) कमान = धनुष। कृसानु = अग्नि। अवाँ = भट्ठी। कोप = क्रोध।

हाँक = पुकार। नृकेहरि = नृसिंह। प्रतीति = विश्वास।
पन्हाइ = थन में दूध उतारती हुई। बावरी = पागलपन की। बिये
तें = दूसरे से। पैज = प्रतिज्ञा।

गीतावली

बात = पवन। आतप = घाम, गर्मी। जामिनि = रात। दुतिदामिनि
= विद्युत कान्ति से युक्त।
मते = मत में, राय में। कालिमा = कलंक, कालापन। सुचि
= पवित्र। सुकृती = पुण्यात्मा, पुण्यकर्म करने वाला।
खल-बच-बिसिखन = दुष्टों के वचनरूपी वाण से। बाँची = बची।
सुधा = अमृत।
आरति = व्याकुलता। निमेष = पलक मारने का समय। बरत
= जलता हुआ, गर्म। बारिज = कमल। सद्य = तुरन्त।
निवाज = कृपा करने वाला। बहोर = लौटाने वाला। साजक
= सजाने वाले, संभालने वाले। समन = शमन करने वाला, शान्त
करने वाला। निकाज = बिना काम का।
साखामृग = वानर। संघाती = साथी। प्रचारे = उत्तेजित किया,
ललकारा।

विनयपत्रिका

मूढता = मूर्खता। सुरसरिता = गंगा। आस = आशा। घन
= बादल। गच = फर्श। सेन = बाज। जड़ = मूर्ख। कुचाल
= बुरा आचरण, दुष्टता।
सिरानी = बीत गयी। डसैहाँ = बिछाऊँगा। खसैहाँ = गिरने दूँगा।
कंचनहिं = सोना को। मधुकर = भौरा।
द्रवइ = द्रवित होना। अरपि करि = अर्पित करके, देकर।
नेम = नियम। परुष = कठोर। पावक = अग्नि। अंबिचल = स्थिर,
अचल।
पामर = नीच। बनिता = स्त्री। दुराशा = बुरी इच्छा। दसबदन
= रावण।

बिहारी

- (१) भव-बाधा = सांसारिक विघ्न। झाई = परछाहीं, झलक, ध्यान।
स्यामु = श्यामवर्ण वाले कृष्ण, कृष्ण, काले रंग वाला (कल्मष, दुःख आदि)। हरित दुति = हरे रंग वाला, हरा-भरा (प्रसन्न) कान्तिरहित।
- (२) अनाकनी = अनसुनी करना। गुहारि = पुकार। बिरदु = यश।
बारक = एक बार। बारनु = हाथी।
- (३) जोग = संयोग, योग (चित्तवृत्ति के निरोध द्वारा जीवात्मा को परमात्मा में लीन करना)। मैन = कामदेव। पिय = प्रियतम, परमात्मा। अद्वैतता = अभिन्नता। काननु = कानों को, जंगल। नैन = नेत्र।
- (४) वारना = न्यौछावर करना। सुजान = चतुर, ज्ञानी। उरबसी = उर्वशी अप्सरा, हृदय पर पहनने का आभूषण।
- (५) अलि = सखी। अहेरी = शिकारी। मार = कामदेव। काननचारी = कानों तक विचरण करने वाले अर्थात् दीर्घ, जंगल में विचरने वाले।
- (६) कंजनु = कमलों को। गंजनु = तिरस्कार।
- (७) हिय = हृदय।
- (८) सर = वाण। नीके = अच्छे।
- (९) बिसरार्ई = विस्मृत कर दी। बानि = आदत।
- (१०) जग-बाइ = संसार की वायु अर्थात् जगत का बुरा प्रभाव।
- (११) पत्रा = पंचांग। पून्यौ = पूर्णिमा। ओप = कान्ति, चमक। उजास = प्रकाश, उजाला।
- (१२) ब्यौरति = सुलझाती है। कच = बाल। दीठि = दृष्टि।
- (१३) तंत्रीनाद = वीणा आदि का मधुर स्वर। सरस राग = रसीला गान।
बूड़े = डूबे, नष्ट हुए। तरे = पार हो गये, श्रेष्ठ हो गये। रति रंग = प्रीति का आनन्द।

- ४) सरि = बराबरी, तुलना। कितकु = कितना। जातरूप = स्वर्ण।
जातु दुरि = छिप जाता है।
- ५) नैक = थोड़ा। छामु = क्षीण। नाँदि = जब दीपक में तेल कम हो
जाता है तो बुझने के पहले वह भभककर जल उठता है। इसे
दीपक का नाँदना कहते हैं।
- ६) नींदौ = नींद भी। नींदनु = निन्दा। जोग = योग्य।
- ७) अनुरागी = प्रेमी। गति = चाल, दशा। स्याम = कृष्ण, काला रंग।
उज्जलु = निर्मल, श्वेत।
- ८) सियरानु = शीतल हो गया। जमाई = जामाता। लौं = समान।
तेज = उष्णता।
- ९) सुभग = सुन्दर। सिरमौरु = शिरोमणि, श्रेष्ठ। ठौरु = स्थान।
- १०) गुननु = गुण। कनकु = सोना, धतूरा। बिरद = यश।
- ११) तन दुति = शरीर की कांति। मग = मार्ग। केलि = क्रीड़ा। निकुंज
= लतामण्डप।
- १२) पतित = पापी। गननु = समूह।
- १३) हौं = मैं। बौरी = बावली, पगली। ससिहिं = चन्द्रमा को। सीतकर
= शीतल किरणों वाला।
- १४) गेलि = मिलकर। सुमति = सुन्दरमति।
- १५) भूषन = आभूषण। अंजन = काजल।
- १६) पयोधि = समुद्र। पगारु = खाई।
- १७) बहार = वसन्त ऋतु, शोभा। अपत = पत्तों से रहित।
- १८) सुकृत = पुण्य। पराये = दूसरे। पानि = हाथ। पच्छीनु = पक्षियों
को, पक्षवालों को।
- १९) कटि = कमर। बानक = बेष।
- २०) बंक = टेढ़ा। भ्रुव = भौंह।
- २१) आँकु = अंक। उदोत = प्रकाश। लिलार = मस्तक।

- (३२) कनक = सोना ।
- (३३) सवी = यथार्थ चित्र । चितेरे = चित्रकार । कूर = विकृत बुद्धि वाले ।
- (३४) दृग = नेत्र । कुटुम = कुटुम्ब ।
- (३५) भजन = ईश्वर का भजन, भागने के लिए ।
- (३६) सनमानु = सम्मान । खोटें = दुष्ट ।
- (३७) विधि = ब्रह्मा । पायंदाज = पावदान । भूषण = आभूषण ।
- (३८) कुबत = निन्दा । कुटिलता = बुराई, टेढ़ाई । सरल = शुद्ध, सीधा । त्रिभंगी = तीन जगह से टेढ़े ।
- (३९) श्रुति = वेद । सुम्रत्यौ = स्मृतियाँ । निसक = शक्तिहीन, निर्बल । पातक = पाप ।
- (४०) रुचि = इच्छा, शोभा ।
- (४१) सराधपखु = श्रद्धा पक्ष । काग = कौआ । सनमानु = सम्मान ।
- (४२) बतरस = बात करने का आनन्द । लुकाइ = छिपाकर ।
- (४३) अरुन सरोरुह = लाल कमल ।
- (४४) अहि = सर्प । दीरघ-दाघ निदाघ = दीर्घ ताप वाली ग्रीष्म ऋतु ।
- (४५) छिप्यौ = छिपा हुआ । छबीला = शोभायुक्त, सुन्दर । चीर = वस्त्र । कलानिधि = चन्द्रमा । कालिन्दी = यमुना नदी । नीर = जल ।
- (४६) अनियारे = नुकीले । सुजान = चतुर ।
- (४७) पट = वस्त्र । झर = लपट ।
- (४८) मनु = मन । तीर = किनारे ।
- (४९) पीत पटु = पीताम्बर । सैल = पर्वत । आतप = धूप, सूर्य का प्रकाश ।
- (५०) बरन = वर्ण, रंग । बास = सुगन्ध । गात = शरीर ।

भूषण

- १) तूल = तुल्य। पावक = अग्नि। धाम सुधा = अमृत का धाम, चन्द्रमा। बहुरौ = फिर। चक्कनि = चक्का। असु = प्राण। धाके = आतंकित हुए। तेग = तलवार। बसुधा = पृथ्वी। बधू = स्त्री। बंदन = सिंदूर।
- २) नाग = सर्प। इंद्र-नाग = इन्द्र का हाथी (ऐरावत)। अबस = व्यर्थ। चौर = चमर। बात = पवन। भौर = भौरा। पुण्डरीक = कमल। छीरधि = क्षीरसागर। पंक = कीचड़। कलानिधि = चन्द्रमा। टंक = एक तौल।
- ३) चपला = बिजली। चाप = धनुष। बैरख = झंडा। धुरवा = बादल। पटल = समूह। पावस = वर्षा ऋतु। साज = सामान। सनाह = कवच। सैन = सेना।
- ४) कामिनी = स्त्री। जामिनि = रात। दामिनि = बिजली। पावस = वर्षाकाल। सूरति = स्वरूप। नलिनी = कमलिनी। पूषन = सूर्य। जाहिर = प्रसिद्ध। जहान = संसार। खुमान = आयुष्मान, दीर्घजीवी, राजा का सम्बोधन पद।
- ५) तुरी = घोड़ा। करी = हाथी। मंगन = भिक्षुक। निहाल करना = संतुष्ट करना। रिझाना = प्रसन्न करना। आनरितैं = दूसरी ऋतुएँ। नद = बड़ी नदी।
- ६) पछाँह = पश्चिम। अवरंग = औरंगजेब। मुहीम = आक्रमण। हजरत = श्रीमान। चाकर = नौकर। नेक = कुछ भी। उजर = आपत्ति, एतराज। उबरते = बचते। घने = बहुत से।
- ७) बितान = चँदोवा। छिति = पृथ्वी। छोर = किनारा। रजत = चाँदी। हौंस = इच्छा। हेय = सोना। हय = घोड़ा।
- ८) कर = हाथ। छिति = पृथ्वी। छाजत = शोभित होता है। गुनी = गुणी। गाजत = गरजते हैं।
- ९) रचै = रचना करते हैं। हरिवारे = विष्णुवाले। अवनी = पृथ्वी। जवनी = मुसलमान स्त्रियाँ। भतार = पति।

- (१०) आदि = सबसे पहले। विरंचि = ब्रह्मा। जीव जड़ = जीव और जड़, जड़-चेतन। उर = हृदय। जीव = चेतन। पैज = प्रतिज्ञा। अड़ना = दृढ़ रहना।
- (११) दुरदै = हाथी ही। तुरग = घोड़ा। परकीति = प्रकृति। पर = पंख। कोक = चक्रवाक। पच्छिनहिं = पक्षियों में ही। बदरी = बेर का पेड़। बैर = शत्रुता, बेरफल। अदली = न्याय करने वाला। परिसंख्या अलंकार।
- (१२) तनै = पुत्र। करनी = कार्य। धरनी = पृथ्वी। नीकी = अच्छी। भोज = धारा नगरी के दानी राजा भोज। बिक्रम = पराक्रमी राजा विक्रमादित्य। रीझि = प्रसन्न होकर। धनेस = कुबेर। नेक = थोड़ा।
- (१३) आनन = मुख। बरम्हाय = आशीर्वाद देकर। बानी = सरस्वती।
- (१४) हेरत = ढूँढ़ता है। गजइन्द्र = ऐरावत। इन्द्र को अनुज = विष्णु। दुग्धनदीस = क्षीरसागर। सुरसरिता = गंगा। रजनीस = चन्द्रमा। गिरीस = शंकर। मीलित अलंकार।
- (१५) कल्पद्रुम = कल्पवृक्ष। मनोज = कामदेव। नरसिंह = पुरुषों में सिंह। संगर = युद्धक्षेत्र। नरसिंह = नृसिंह। उल्लेख अलंकार।
- (१६) गुरुता = महत्ता। परजा = प्रजा। अभै = अभय, भयहीन। टेक = प्रतिज्ञा। कृपान = तलवार।
- (१७) बाने = भाले के आकार का हथियार। नग = पर्वत। भहराने = गिर पड़े। पराने = भाग गये। हौदा = हाथी की पीठ पर रखा जाने वाला आसन। उकसाने = हिलडुल गये। कुंभ = हाथी का मस्तक। कुंजर = हाथी। अलि = भौंरा। दरार = रगड़। कमठ = कच्छप। बिहराने = फट गये। फन शेष के = शेषनाग के फण। करारे = कठोर।
- (१८) राख्यौ = रक्षा की। हिन्दुवानी = हिन्दुत्व। रजपूती = क्षत्रियत्व। समसेर = तलवार। दुनी = दुनिया।
- (१९) अंब = आम। झौर = गुच्छा। अवनि = पृथ्वी। बिडारिबे = नष्ट करने के लिए। कानन = जंगल।
- (२०) आली = सखी। बासी = निवासी। कारो घन = काला बादल। निगोड़ी = दुष्ट।

घनानन्द

- (१) लोल = चंचल। कलोल = क्रीड़ा। कल = सुन्दर। जलजावलि द्वै = दो लड़ वाली मोतियों की माला। धर = पृथ्वी। दुति = कान्ति।
- (२) तारनि = तारों को। ताकना = ध्यान से देखना। इकतार = लगातार। तारनि सौं = पुतलियों से, आँखों से। भावतो = प्रिय। सोहन = सामने। जोहन = देखना। आरति = लालसा।
- (३) हीन = रहित। अकुलनि = आकुलता। मीत = मित्र। पानि = हाथ। प्रमानै = प्रमाणित करती हैं। नीर = जल। जान = सुजान, प्रेयसी।
- (४) तब = संयोगावस्था में। हित = प्रेम। पोष = पोषण। तोष = तुष्टि। बिललाना = व्याकुल होना। समाज = समूह। टरे = हट गये, दूर हो गये।
- (५) बानि = आदत। अघानि = तृप्ति। आनि = शपथ। हुतो = था। सहारियै = सहारा दीजिए। दहै = जलाती है। रीझ = मुग्ध होने का भाव।
- (६) कौंधन = चमक, झलक। थ्यावस = धैर्य। उघरी = खुली हुई।
- (७) उसास = उच्छ्वास, लम्बी साँस। उसीजै = उबल जाता है। उद्वेग = उद्वेग, व्याकुलता। आवस = भाप। ज्यौ = जीव। कहलाय = व्याकुल होना। हेरे = देखे। मसोसना = मन ही मन दुःख करना।
- (८) दैबो = देना। मो = मेरी। गति = दशा। घरीकहूँ = घड़ी भर के लिए भी। न्यारे = पृथक्। आहि = है। सुखारे = सुखी।
- (९) चुहुल = विनोद। पन = प्रण। अमी = अमृत। जिन्हैं = जिनको। भान = भानु (सूर्य)। तमी = अन्धकार ही। रमी = समायी हुई।

- (१०) पाती मधि = पत्र में। छाती छत = छाती में विरह = छुरी। घाती = घातक। पाँगुरी = पंगु। किलकि ताती = तप्त। राती = लाल। तहीं = त्यों ही। जौब = तौब = तो अब। नेह = प्रेम, तेल। बातें = वचन, बतिय, = जीभ। पुंजनि = समूह।
- (११) कंत = प्रिय। रमैं = रमण करते हैं। तेह = आँच। परतन्त = परतन्त्र। रैनि = रात। सुतन्तर = स्वतंत्र। तचे = तप्त, पके। वेई = वही। जाय परै = जा पड़ता है, हो जाता है।
- (१२) बधिकौ = बहेलिया भी। रावरी = आपकी। गति = चाल (आचरण)। आवरी = व्याकुल। जकना = चकित होना। मूझि परै = मुरझा जाता है, मूर्च्छित हो जाता है।
- (१३) बीर = भाई। पौन = पवन। गौन = गमन। बीरी = बीड़ा उठाने वाला। मनै = मन को। ढरकौहीं = ढलने वाली, द्रवित होने वाली। ओछे = छोटे। दुखियान = दुखियों को। उजियारे = दीप्ति युक्त, कान्तिशाली। गुनभारे = अत्यन्त गुणी। अंत = अन्यत्र। अमोही = मोहरहित। मूरि = जड़ी, बूटी।
- (१४) सौंधे = सुगन्धित पदार्थ। दाहक = जलाने वाला। गाहक = ग्राहक। जी = प्राण। ही = हृदय। धमार = होली के गीत। रचावन = रचने वाले। फीका = अरुचिकर, जो अच्छा न लगे।
- (१५) सूधो = सीधा। सयानप = चतुरता। बाँक = टेढ़ा, टेढ़ापन। निसांक = निःशंक, शंकारहित। छटाँक = सेर का सोलहवाँ भाग, शोभा की झलक।
- (१६) कोरना = कुरेदना। पैंडे परे = पीछे पड़े हैं। कलापी = मोर। दल = सेना। बरसावन = बरसाने वाले। डरारे = डराने वाले, डरावने। बजमारे = वज्र का मारा हुआ (परम दुष्ट), स्त्रियों की गाली।
- (१७) हूकनि = पीड़ा से। अचकाँ = अचानक। पचना = परेशान होना। टक = टकटकी, स्थिर दृष्टि। पैंडे = पीछे।

गौ = ढल गया। ढार = द्रवित होने की वृत्ति। ढोरना
ढरकाना। अरसानि = आलस्य। सरसानि = सरसता। निहोरना
= अनुरोध करना, विनय करना। भोरना = भ्रम में डालना, बहकाना।
बिसवासी = विश्वासघाती।

(१) पन = प्रतिज्ञा। सोधि = शुद्ध करके। चारु = सुन्दर। पचिकै
= परेशान होकर। हियो हितपत्र = हृदय रूपी प्रेम पत्र। अवरेख्यो
(२) = अंकित की। टूक = टुकड़ा। बाँचि = बाँचकर, पढ़कर।

(२०) परकाजहि = दूसरों के कार्य के लिए। परजन्य = बादल। निधि
= समुद्र। जीवन = जल, प्राण। मेरियौ = मेरी। परसौ = स्पर्श
कीजिए। अँसुवानहिं = आँसुओं को।

(२१) कान्ह = कृष्ण। अकलैन की = अकेलों की, एकाकियों की। बेदन
= वेदना। मनमोहन = मन को मोहने वाले (कृष्ण)। बिमनैन की
= परवश मन वालों की। बौरे = पागल, मूर्ख। आरातेवंत
= व्याकुलता से भरे।

(२२) हेरत = देखते हुए। औधि = अवधि। बदी = निश्चित की। औटि
= खौलाकर। मैन = कामदेव। मदी = शराब। बहीर = सेना का
सामान।

(२३) अन्तर = अन्तःकरण, हृदय। अन्त = अन्यत्र। अकि = अथवा।
पानि = पानी। धीरौ = धैर्य धारण करूँ।

(२४) बीज = बिजली। अंक = गोद। उज्यारी = चाँदनी। सिंगार
= शृंगार। दीपति = दीप्ति। फबना = शोभित होना। चोप
= उत्साह।

(२५) ताती = तप्त। रसनाहि = जिह्वा को। कान करना = ध्यान देना।
कित = कितना। ऊतर = उत्तर।

W



प्रकाशक :

प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ